वर्ण-व्यवस्था

गांधीजी

नवजीवन प्रकाशन मंदिर
अहमदाबाद

लेखककी अन्य पुस्तकें

अहिंसक समाजवादकी ओर

गांधीजी मानते थे कि सच्चे समाजवादका लक्ष्य प्रेम और शांति है, असलिअे वह अहिंसक साधनोंसे ही प्राप्त हो सकता है। अिस पुस्तकमें अहिंसक समाजवादकी स्थापनाका आदर्श किन्तु व्यावहारिक मार्ग बताया गया है। आशा है हमारी राष्ट्रीय सरकारके समाजवादी समाज-व्यवस्थाके ध्येयको मूर्तरूप देनेमें यह पुस्तक सरकार और जनता दोनोंका सही मार्गदर्शन करेगी।

कीमत १.००　　　　डाकखर्च ०.८७

गोसेवा

अिस संग्रहमें सच्ची गोरक्षा और गोसेवाके बारेमें गांधीजीके तथा अुनके निकटके साथियों और सहयोगियोंके लेख तथा भाषण अिकट्ठे किये गये हैं। अुन्होंने अेक जगह कहा है: "मुझसे कोअी पूछे कि हिन्दू धर्मका बड़ेसे बड़ा बाह्य स्वरूप क्या है, तो मैं गोरक्षा बताअूंगा।"

कीमत १.५०　　　　डाकखर्च ०.३७

सत्य ही अीश्वर है

अिस पुस्तकमें अीश्वर, अीश्वर-साक्षात्कार और अीश्वर-परायण जीवन-संबंधी गांधीजीके लेखों और भाषणोंसे लिये हुअे वचनोंका संग्रह किया गया है। अिसके अध्ययनसे पता चलेगा कि गांधीजी 'अीश्वर सत्य है' के विश्वास परसे 'सत्य ही अीश्वर है' के विश्वास पर कैसे पहुंचे।

कीमत ०.८०　　　　डाकखर्च ०.३१

hsbhandari@iitmandi.ac.in

वर्ण-व्यवस्था

गांधीजी

अनुवादक

रामनारायण चौधरी

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म-विभागशः ।

गीता : ४–१३

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

पहला संस्करण : ३०००, १९४८
पुनर्मुद्रण : ३०००, १९५६
पुनर्मुद्रण : ४०००

रु० १.५०

फरवरी, १९५९

मेरे लेख पढ़नेकी कुंजी

यह पुस्तक फिरसे पढ़नेकी मेरे पास फुरसत नहीं है। फिरसे पढ़नेकी अिच्छा भी मैं नहीं रखता। मेरे पास दूसरा बहुत काम है।

मेरा खयाल यह है कि मनुष्य रोज आगे बढ़ता है या पीछे जाता है, कभी अेक जगह नहीं रहता। सारी दुनिया गतिमान है। अिसमें कोअी अपवाद नहीं है। कोअी चीज अिस नियमसे परे नहीं है। अिसलिअे अगर मैं यह दावा करूं कि मैं जैसा कल था वैसा ही आज हूं या वैसा ही आगे भी रहूंगा तो वह दावा झूठा है। मुझे अैसा मोह भी नहीं रखना चाहिये।

यह सही है कि मेरे लेख या वचन अैसे होने चाहिये, जिनसे किसीको गलत खयाल न हो। मैं अैसा न लिखूं, जिसके दो या ज्यादा अर्थ हो सकें। यानी मेरा लिखना, बोलना और अमल सत्य और अहिंसाको नजरमें रखकर ही हो। मैं कह सकता हूं कि जबसे मैंने अपनी मांसे वादा किया, तभीसे मैं अैसा करता आया हूं। सच पूछा जाय तो जबसे मैं समझने लगा, तभीसे मैं सत्यका पुजारी रहा हूं।

लेकिन अिसके ये मानी नहीं हैं कि सत्य और अहिंसाको मैंने पूरी तरह देख लिया है, या आज भी देखता हूं। मैं यह मानता हूं कि मुझे सत्य और अहिंसा रोज ज्यादा ज्यादा साफ तौर पर दिखाअी दे रहे हैं। अिसलिअे वर्णाश्रमको जैसा मैं आज देखता हूं वैसा ही मैंने अुसे हमेशा देखा है, यह नहीं कहा जा सकता। मैंने अैसा कहा है कि वर्ण और आश्रम हिन्दू* धर्मकी देन है। आज भी मैं अिस कथन पर कायम हूं। मेरी मान्यताके न तो आज वर्ण रहे और न आश्रम। दोनोंका पालन धर्मके रूपमें होना चाहिये। और कह सकते हैं कि अिनमें आश्रम तो गायब ही हो गये है। वर्ण सिर्फ अहंकारकी शकलमें देखनेमें आते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होनेका दावा

* हिन्दू नाम दूसरोंका दिया हुआ है। जो धर्म हिन्दू-धर्मके नामसे पहचाना जाता है, अुसका नाम मानवधर्म है; यानी मनुष्यमात्रका धर्म। अिस धर्मकी हमेशा खोज होती है। वह अनन्त है। वह वेदमें या मनुस्मृतिमें नहीं है। वह तो मानवके हृदयमें है। और जैसे जैसे मानव संस्कारी बनता जाता है, वैसे वैसे अुसके हृदयमें वह धर्म जागता है।

ही अहंकार है। जहां धर्म हो वहां अहंकारका क्या काम? शूद्रकी तो गिनती ही कहां है? शूद्र यानी नीच! और अतिशूद्र या अछूत यानी नीचसे भी नीच! अिसे धर्म नहीं, अधर्म कहना चाहिये।

गीताके चार वर्ण आज कहां हैं? वर्णसे जाति अलग चीज है। जातियां बेशुमार हैं। मैं नहीं जानता कि जातियोंके लिअे गीतामें या दूसरे ग्रंथोंमें कोअी आधार है। गीतामें चार वर्ण बताये हैं और वे गुण और कर्मके आधार पर हैं। चार तो अुदाहरणके तौर पर हैं। अिसलिअे चारसे ज्यादा भी कह सकते हैं और कम भी। आज तो अेक ही वर्ण है और वह शूद्रका कहिये या अतिशूद्रका — हरिजनका — अछूतका। अिसमें मुझे कोअी शक नहीं कि यह बात सही है। यह बात सब हिन्दुओंको समझा सकूं, तो हिन्दू जातिमें होनेवाले सब झगड़े मिट जायं। हिन्दू, मुसलमान वगैराके कौमी झगड़े भी मिट जायं और हिन्दुस्तानकी जनता दुनियामें बहुत बड़ा दर्जा पा जाय। जिस तरह अूंच-नीचपन मानना धर्म नहीं अधर्म है, अुसी तरह रंगद्वेष या काले-गोरेका भेदभाव भी पाप है। अूंच-नीचपन या रंगद्वेष किसी शास्त्रमें देखनेमें आये तो वह शास्त्र नहीं है। मनुष्यको यह निश्चय करके ही शास्त्रको छूना चाहिये कि शास्त्र धर्मके खिलाफ कोअी बात कह ही नहीं सकता।

जात-पांतके भेदने अितनी जड़ जमा ली है कि अुसके छींटे मुसलमान, अीसाअी वगैरा सभी धर्मोंको लगे हैं। अितना तो सही है कि सभी धर्मोंमें थोड़ी-बहुत बाड़ाबन्दी रही है। अिस परसे मैं अिस फैसले पर पहुंचा हूं कि हर मनुष्यमें यह दोष मौजूद है। शुद्ध धर्मसे ही यह दोष धुल सकता है। अैसे बाड़े और अूंच-नीचपन मैंने तो किसी धर्म-पुस्तकमें नहीं देखे। धर्मके लिहाजसे हर मनुष्य बराबर है — ज्यादा पढ़ा हुआ, ज्यादा बुद्धिवाला या ज्यादा धनवान आदमी अनपढ़, मूर्ख या गरीबसे अूंचा नहीं है। अगर वह संस्कारी यानी धर्मसे शुद्ध हो चुका है, तो अपनी पढ़ाअी, अपनी अकल और अपनी दौलतसे अपने बेपढ़े, अज्ञानी और गरीब भाअी-बहनोंकी सेवा करेगा, और अुसने जो कुछ पाया है अुसे अपने भाअी-बहनोंको यानी दुनिया-भरको देनेकी कोशिश करेगा। अगर धर्मकी यह हालत है, तो अिस अधर्मकी हालतमें खास तौर पर अपने दिलसे अतिशूद्र यानी नीचीसे नीची जातिका बननेमें धर्म है। अपने पासकी संपत्तिका वह मालिक नहीं, बल्कि रक्षक है। अुसे वह दुनियाके लिअे अिस्तेमाल करेगा। अपने काममें अुतनी ही लेगा, जितनी अुसकी मेहनतके तौर

पर अुसके हिस्सेमें आयेगी। अैसा हो तो न कोअी गरीब रहे, न अमीर। अैसी व्यवस्थामें अपने-आप सब धर्म बराबर समझे जायेंगे। यानी धर्मके, जात-पांतके और अमीर-गरीबके भेद और झगड़े मिट जायेंगे।

यहां यह विचार करना भी अुचित होगा। परतंत्र जातिका अेक सबसे अूंचा धर्म यह है कि मौका मिलते ही पहले अुसे अपनी गुलामीकी बेड़ियां तोड़ डालनी चाहिये। जो परतंत्र हैं, वे जबर्दस्ती बनाये गये अछूत हैं। फिर भले ही अुन्हें पदवियां दी हों, न्यायाधीश या जज बनाया हो, चपरासी बनाया हो या वे राजा हों या रंक। जितनी ज्यादा अुपाधियां, अुतनी ही गुलाम राज्यमें ज्यादा गुलामी। अिस तरह आजादीको धर्मके साथ जोड़ने और धर्मको सर्वव्यापी रूप देनेसे पिछले पैरेमें बताअी हुअी हालत अपने-आप पैदा होनी चाहिये।

यह सुन्दर हालत आज आये या कल, अिसके झगड़ेमें जो खुद धर्म पालना चाहते हैं वे नहीं पड़ेंगे। और अगर बहुत लोग अुस धर्मको पालें, तो सिर्फ परतंत्रता ही नहीं मिटे, बल्कि आजादीमें भी अन्धाधुन्धी न रहे। यह मेरे सपनेका स्वराज्य है। अिसकी मुझे लगन है। अिसे हासिल करनेके लिअे मैं जीना चाहता हूं, और मैं अैसी कोशिश कर रहा हूं कि अिसका अुपाय करनेमें ही मेरी हर सांस निकले।

पढ़नेवालेको अिन विचारोंके खिलाफ अिस पुस्तकमें कुछ भी दिखाअी दे, तो वह अुतना सुधार करके पुस्तक पढ़े।

मेरी मेहनत बचानेके लिअे मेरे विचारोंका जिन्होंने खुलासा किया है और अिसके लिअे खूब मेहनत की है, अुन्होंने मेरे आजके विचारोंकी टिप्पणी भेजी है। श्री किशोरलालका मकसद यह है कि अगर मैं अिस टिप्पणी पर दस्तखत कर दूं, तो मेरा समय बच जाय। अुसमें फेरबदल करनेकी तो मुझे छूट अपने-आप ही थी, मगर अुसे पढ़कर मैंने देखा कि अपने स्वभावके मुताबिक श्री किशोरलाल पुस्तक पढ़ गये, अुस पर अुन्होंने विचार कर लिया और मेरे मौजूदा खयालोंकी गवाहके तौर पर अेक टिप्पणी तैयार कर दी। हालांकि मैं अुस पर हस्ताक्षर नहीं कर सकता, फिर भी वह अिसके साथ प्रकाशित करना मुनासिब है। अुसमें और मेरी कुंजीमें विरोध नहीं। श्री किशोरलालकी टिप्पणी पुस्तकको ध्यानसे पढ़कर लिखी गयी है, अिसलिअे शायद पढ़नेवालेको वह सहायक हो सके। सत्यकी जय हो!

महाबलेश्वर, ३१–५–'४५ **मो० क० गांधी**

टिप्पणी

अैसा अेक सुझाव किया गया है कि गांधीजी अपने लेखोंका संग्रह फिरसे जांचकर अपने आजके विचार ही जाहिर करें और अिस तरह अुनका सुधरा हुआ संस्करण ही प्रकाशित किया जाय। मुझे यह सूचना ठीक नहीं मालूम हुअी। लेकिन अिस टिप्पणीसे शायद मामूली पढ़नेवालेको मदद मिलेगी।

यह पुस्तक 'वर्ण-व्यवस्था' के बारेमें कोअी पूरा शास्त्र या कानून नहीं। लेकिन पच्चीस सालके दरमियान गांधीजीकी भावनाओं और विचारोंका जिस तरह विकास हुआ है अुसका अितिहास है। हालांकि गांधीजीने अकेले ही ये लेख लिखे हैं, फिर भी बहुत हद तक जैसे अुनके विचारोंका विकास हुआ है, वैसे ही हिन्दू समाजके खासे हिस्सेका विकास भी अिन लेखोंसे जाहिर होता है। जिस ढंगसे कोअी बात वे आज पेश करते हैं, अुससे ज्यादा नरम ढंगसे पेश करने पर भी जो चीज वे हिन्दू समाजको आसानीसे न समझा सके थे, वही बात आज वे ज्यादा सख्त होने पर भी समझा सकते हैं। यह बताता है कि अेक पीढ़ीमें हिन्दू समाजके विचारोंमें कितनी क्रांति हुअी है। समाजका अध्ययन करनेवालेके लिअे यह साक्षी कायम रहना अच्छा ही है। दूसरे, अब भी आगे चलकर अुनके विचारोमें फर्क न पड़ेगा, अिसका क्या भरोसा? वे सत्यके शोधक हैं। अिसलिअे जितनी और जैसी सचाअी अुनकी समझमें आती जाती है, वैसी ही वे लोगोंके सामने पेश करते जाते हैं और ज्यादा जाननेकी अिच्छा रखते हैं। क्या अिसीलिये समय समय पर सब विषयोंके सब लेखोंको सुधारा जाय? यह असंभव है।

चूंकि हर लेखके नीचे तारीख दी हुअी है और अुनके आखिरी विचारोंको ही अधिक सच्चा समझनेकी चेतावनी कअी जगह दी हुअी है, अिसलिअे बुद्धिसे काम लेनेवाले सच्चे शोधकको रास्ता भूलनेका डर नहीं हो सकता। अितना होने पर भी अगर कोअी आदमी नये विचारको छोड़कर पुराने विरोधी विचारको पकड़े, तो समझना चाहिये कि या तो वह बुरे अिरादेसे अैसा करता है या वह अभी विचारकी अुसी सतह पर है, जहां गांधीजी किसी समय थे। अीमानदार शोधक

गांधीजीके विचारोंका सार निकाले तो वह दूसरी बात है, जैसा 'गांधी-विचार-दोहन' में मैंने किया है।

अगर कोओी किसीके लेखोंको लापरवाहीसे पढ़े, अुनमें अिस्तेमाल किये गये शब्दोंको लिखनेवालेके अर्थमें नहीं, बल्कि अपने माने हुअे अर्थमें ही समझा करे और फिर गड़बड़में पड़कर टीका करने बैठे, तो अुसका कोओी अिलाज नहीं है। अैसे टीकाकार खुद ही गड़बड़में नहीं पड़ते, बल्कि असली लेखोंको न पढ़नेवाले अपने श्रोताओं और पाठकोंको भी गड़बड़में डालते हैं। अितना कहकर अुतावले पाठकको सावधान करनेकी और यह दिखानेकी गरजसे कि गांधीजीके विचारोंमें धीरे धीरे कैसे फर्क पड़ता गया है, अेक अुदाहरण देता हूं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय वगैरा वर्ण, मोढ़, लाड वगैरा जातियां और ब्राह्मण-अब्राह्मण जैसे फिरकोंकी बुनियाद पर खड़ी हुअी जातियां — तीनों अलग अलग चीजें हैं। अिन सबके लिअे अंग्रेजीका 'कास्ट' शब्द काममें लेनेसे गड़बड़ पैदा होती है। आम तौर पर गांधीजीने तीनोंके भेद अलग अलग शब्दोंमें दिखाये हैं। किसी जगह अेक ही तरहकी परिभाषा न रखी जा सकी हो या अेकके बजाय दूसरा शब्द अिस्तेमाल हुआ हो, वहां बहुत करके प्रसंगसे सफाअी हो जाती है।

अब अिन तीनमें से मुझे याद नहीं कि गांधीजीने जातियोंका होना अपने जमानेमें जरूरी या अच्छा माना हो। यह तो हो सकता है कि अुनकी निंदा करनेकी भाषा सख्त होती गअी हो। अेक समय जातियोंको तोड़ना अुन्हें जरूरी मालूम होता था, लेकिन अैसा नहीं लगता था कि तोड़े बिना काम ही नहीं चलेगा। अब तो अुन्हें अैसा ही लगता है कि जातियोंको तोड़े बिना काम नहीं चल सकता।

ब्राह्मण-अब्राह्मण जैसे फिरके तो आजकी पेचीदा राजनीतिक हालतसे पैदा हुअे हैं। ये जातिभेदसे निकली हुअी बुराअियां हैं और अुससे बेजा फायदा अुठानेके लिअे बनाअी गअी आजकलकी संस्थाअें हैं। जातियोंके मिटनेसे ही ये मिट सकती हैं।

'वर्ण' के बारेमें गांधीजीके विचार मौलिक हैं। अिनका जातियोंके साथ कोओी संबंध नहीं है; रोटी-बेटी-व्यवहारसे कोओी सरोकार नहीं है।

ये अूंचनीचके खयाल या रुपये-पैसेकी कमी-बेशी पर नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक बराबरीके अुसूल पर और अुस अुसूल पर अमल करनेके आदर्श पर बनाये गये हैं। हो सकता है कि पढ़नेवाला कल्पनाशील न हो, तो अिन विचारोंको आकाशमें अुड़ना ही समझे। आदर्शवादी जनता अुन पर अमल करनेकी कोशिश करेगी। गांधीजीके नमूनेके समाजमें विश्वविद्यालयका विद्वान प्रोफेसर और गांवका मुंशी, बड़ा सेनापति और छोटासा सिपाही, होशियार व्यापारी और अुसका गुमाश्ता, मजदूर और भंगी सब अेकसे खानदानी माने जायंगे और सबकी खानगी माली हालत बराबर होगी। अिससे अिज्जत या आमदनी बढ़ानेके लिअे अेक धंधा छोड़कर दूसरा धंधा करनेका लालच नहीं रहेगा। कोअी धंधा करनेकी लियाकत विरासतमें चली आती हो या शिक्षा और आसपासके वातावरणसे मिली हो, लेकिन सौमें नब्बेसे ज्यादा बच्चोंकी लियाकत तो बापदादेका धंधा करनेकी ही होना संभव है। वह पेशा करनेसे आमदनी या अिज्जत कम न हो, तो वे फिजूल ही दूसरा धंधा ढूंढ़ना न चाहेंगे। जिस तरह आज योग्यता हो या न हो तो भी सैकड़ों विद्यार्थी युनिवर्सिटीकी डिग्रियोंके पीछे पड़ते हैं, वैसे वे बेकार कोशिश न करेंगे। गांवोंके तेज बुद्धिवाले नौजवान गांवोंको खाली करते नहीं देखे जायंगे। हो सकता है कि अिक्के-दुक्के बच्चोंका झुकाव दूसरी तरफ हो। यह भी मुमकिन है कि बदलती हुअी जरूरतोंके मुताबिक अलग धंधोंके लिअे कुछ लोगोंको प्रेरणा की जाय। गांधीजीकी कल्पनामें अिसकी मनाही नहीं है। न अुसमें आगे बढ़नेके बजाय अेक जगह बैठे रहनेकी गुंजाअिश है। जो आज ब्राह्मण माने जाते हैं, मगर ब्राह्मणका धंधा नहीं करते या जो ब्राह्मण तो नहीं माने जाते, मगर धंधा ब्राह्मणका ही करते हैं और अुसके आदर्शके अनुसार अमल करते हैं, अुन लोगोंको किस नामसे पहचाना जाय, अिस बारेमें अेक समय गांधीजीने अपने विचार जाहिर जरूर किये हैं। लेकिन यह कहा जा सकता है कि अब अुन्हें अिस बातमें कोअी दिलचस्पी नहीं रही कि किसे क्या नाम दिया जाय। तमाम पेशेवालोंके चार ही दर्जे किये जायं या कम-ज्यादा, अिस बारेमें अुन्होंने अपने विचार 'कुंजी' में बता ही दिये हैं।

कि० घ० मशरूवाला

प्रस्तावना*

१

जातिके बारेमें मैंने क्या कहा है और क्या नहीं कहा, यह ढूंढ़नेके लिअे मेरे ढेरसे लेखोंकी छानबीन करनेकी निकम्मी सिरपच्चीमें न पड़कर आपने मुझे नीचे लिखे सवाल भेज दिये सो अच्छा किया :

"१. जाति-व्यवस्था या जात-पांतके बारेमें आपने जो विचार जाहिर किये हैं, अुन पर आज भी आप कायम हैं ?

२. क्या आप अब भी यही मानते हैं कि जाति-व्यवस्था समाजकी सबसे बढ़िया व्यवस्था है और दुनियाको अिसे अपनाना चाहिये ?

३. क्या आप अब भी मानते हैं कि आज जो हजारों जातियां मौजूद हैं, वे सब मिट जायेंगी और अेक-दूसरेमें मिलकर आखिरमें सिर्फ चार वर्ण ही रह जायेंगे ? पिछले पच्चीस बरसमें कितनी छोटी जातियां गिरीं और बड़ी जातियोंमें मिल गयीं ?

४. अितिहासके जमानेमें जितनी जातियां हमारे देखनेमें आती हैं, वे सब जन्मके आधार पर बनी और अुसमें से पैदा होनेवाले भेदभाव पर खड़ी हुअी थीं। तो फिर जो बराबरी और भाअीचारा आप सिखाते हैं, अुसके साथ समाजकी अैसी व्यवस्थाका मेल बैठेगा ? आप जोर देते हैं कि भंगियोंको कयामतके दिन तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी झाड़ू लगानेका ही काम करना चाहिये, तो आगे चलकर अिनकी जातिका क्या होगा ?

५. श्री संजाणाने 'गायकी राजनीति' के जो दोष निकाले हैं, क्या वे दरअसल सही नहीं है ?

---

* जातियोंकी व्यवस्थाके बारेमें गांधीजीके लेखोंमें से कितने ही अुद्धरणोंके साथ अेक भाअीने जो सवाल भेजे थे, अुनके जवाबमें गांधीजीने जातियोंके बारेमें अपने विचार फिरसे थोड़ेमें पेश किये हैं। अुन सवालोंके जवाब अिस पुस्तककी भूमिकाके तौर पर दिये गये हैं। — प्रकाशक

६. केन्द्रीय असेम्बलीमें हिन्दू कानूनमें जात-पांत दूर करनेके लिअे जो प्रस्ताव पेश किया गया है, क्या अुसे आप पसंद करेंगे ?

७. श्री संजाणाकी अिस रायके बारेमें आपकी क्या राय है कि 'कांग्रेस सनातनी हिन्दू संस्था है और महात्माकी छत्रछायामें जात-पांतवाले सनातनी हिन्दू-धर्मकी खैरख्वाह और अुसे फिरसे अूंचा अुठानेवाली मशीन बनी हुअी है ?' अगर श्री संजाणाका यह कहना सच हो तो क्या कांग्रेसके अिस दावेको ठेस नहीं पहुंचती कि कांग्रेस **शुद्ध** राष्ट्रीय संस्था है और अुसमें फिरकेबंदीकी भावना नहीं है ?

८. क्या लोकशाही और लोकशाही संस्थाओंके साथ जाति-व्यवस्था मेल खाती है ?"

अिस पर मेरा जवाब यह है :

यह जाननेके लिअे कि मैं आज क्या मानता हूं, मेरे सारे पिछले लेखोंको देखनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि मेरी आजकी मान्यता ही सही है। मैं यह कहना चाहता हूं कि हिन्दू-धर्ममें जाति आज जिस रूपमें मौजूद है, वह अेक अैसी बेहूदा चीज है, जिसका वक्त गुजर गया है। सच्चे धर्मकी वृद्धिमें अिससे रुकावट ही होगी और अगर हिन्दू-धर्म और हिन्दुस्तानको जीना है और दिन-दिन तरक्की करना है, तो जात-पांत मिटनी ही चाहिये। अैसा करनेका अुपाय यह है कि सब हिन्दुओंको अपना भंगी आप बन जाना चाहिये और पीढ़ी-दर-पीढ़ीके भंगी कहलानेवालोंको अपना भाअी समझना चाहिये।

मैंने 'भंगी' अिसलिअे लिखा है कि जीनेकी सबसे नीची सीढ़ी पर वही खड़ा है। अिसमें आपके सब सवालोंका जवाब आ जाता है और अिससे ज्यादा कहनेकी मेरे लिअे जरूरत नहीं रहती। यह साफ है कि सवाल पूछनेवालेने मेरे लेखोंको पढ़नेकी तकलीफ नहीं अुठाअी। . . . सभी जानते हैं कि कांग्रेस न शुरूसे सनातनी हिन्दू संस्था थी और न आज ही है। वह अलग अलग विचार रखनेवालोंकी अेक लोकशाही संस्था है और मेरी देखभालके कारण ज्यादा लोकशाही बनती जा रही है।

अप्रैल, १९४५

मो० क० गांधी

वर्ण-धर्म पर मैंने आज तक जो कुछ लिखा है, यह छोटीसी पुस्तक अुसका अेक संग्रह है। यह कअी महीनों पहले छप चुकी थी, लेकिन प्रस्तावना न होनेसे वैसे ही पड़ी रही। मैंने प्रस्तावना लिख देना मंजूर किया था। पर हरिजन-यात्राके कारण आज तक लिख ही न सका। अलग अलग मौकों पर लिखा हुआ सारा अेक बार पढ़नेके बाद मैं प्रस्तावना लिखना चाहता था। यह अिच्छा तो आज भी पूरी नहीं कर सकता। शायद अिसीमें भला है। मुझे आगे-पीछेका सम्बन्ध अटूट रखनेका लालच नहीं है। सचाअीको नजरके सामने रखकर आज जो कुछ मैं मानता हूं, वही कह देना ठीक है। प्रकाशक भी यही चाहते हैं। यह देखना पढ़नेवालेका काम है कि आगे-पीछेका संबंध बना रहता है या नहीं। जहां अुसमें पढ़नेवालेको मेल बैठता न दीखे, वहां मेरे मनकी हालत जाननेके लिअे अुसे पिछले लेखोंको छोड़कर अिस प्रस्तावनामें लिखा हुआ सही मानना चाहिये। मैं सब कुछ जाननेका दावा नहीं करता। मेरा दावा सचाअी पर डटे रहनेका और जिस वक्त जो सच मालूम हो अुसीके मुताबिक जहां तक हो सके अमल करनेका है। अिससे जान या अनजानमें मुझमें फेरबदल या तरक्की, जो कुछ कहिये, हो सकती है। जहां जान-बूझकर तब्दीली सूझती है, वहां तो मैं अुसे लिख ही देता हूं। लेकिन बारीक तब्दीलियां तो अनजानमें ही हुआ करती हैं। अुनकी याददाश्त कहांसे रखी जाय? वह सतर्क पाठक ही रख सकता है।

लोग मामूली व्यवहारमें वर्ण-धर्म समासका अिस्तेमाल थोड़ा ही करते हैं। वर्णाश्रम-धर्म समास काममें लानेका रिवाज लोगोंमें ज्यादा है। अिस छोटीसी पुस्तकमें आश्रम यानी अुम्रके चार हिस्सोंके बारेमें थोड़ा लिखा है। ज्यादा तो वर्ण यानी समाजके चार हिस्सों पर ही लिखा है। लेकिन यह कहा जा सकता है कि हिन्दू-धर्मका सच्चा नाम वर्णाश्रम-धर्म है। हिन्दू नाम परदेशी मुसाफिरोंका रखा हुआ जान पड़ता है। और अुसका सम्बन्ध भूगोलके साथ है। हमने जो धर्म पाला है, अुसे अगर कोअी खास और मतलब-भरा नाम दिया

जा सकता हो, तो जरूर वह नाम वर्णाश्रम-धर्म है। यह कहनेसे कि हिन्दुओंका धर्म आर्य धर्म है, धर्मके बारेमें कोअी सूचना नहीं मिलती। अिसका मतलब तो अितना ही हुआ कि हिन्दू यानी सिन्धुके पूर्वमें रहनेवाले लोग अपनेको आर्य मानते हैं और दूसरोंको अनार्य; या वेदका धर्म माननेवाले खुदको आर्य और दूसरोंको अनार्य समझते हैं। अैसे नाममें मुझे तो दोष भी दिखाअी देता है। वर्णाश्रम-धर्मसे धर्मकी विलक्षणता जाहिर होती है। यह विचार ठीक हो या न हो, अितना तो सब मानेंगे कि वर्णाश्रमको हिन्दू-धर्ममें बड़ी जगह दी गअी है। स्मृतियोंके जमानेकी अेक भी धर्म-पुस्तक अैसी नहीं देखनेमें आती, जिसमें वर्णाश्रम-धर्मको बहुत बड़ा स्थान न दिया गया हो। वर्णाश्रमकी जड़ तो वेदमें ही है। अिसलिअे कोअी हिन्दू वर्णाश्रमकी अुपेक्षा नहीं कर सकता। अिस प्रथाको समझ कर अुसमें कोअी दोष दिखे, तो अुसे जान-बूझकर छोड़ देना चाहिये; लेकिन अगर यह प्रथा धर्मकी निर्दोष विशेषता हो, तो अिसकी परवरिश करनी चाहिये। वर्णाश्रममें से आश्रम-धर्मका तो नाम और अमल दोनों मिट गये, अैसा कहा जा सकता है। हिन्दू-धर्ममें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, ये चार आश्रम माने गये हैं, और ये हर हिन्दूके लिअे हैं। लेकिन ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थका पालन शायद ही कोअी करता होगा। नामका संन्यास थोड़ी मात्रामें भले ही पाला जाता हो। मगर आश्रम अेक-दूसरेके साथ अितने मिले-जुले हैं कि अेकके बिना दूसरा पाला ही नहीं जा सकता। जिसका आज सब पालन करते हैं, वह तो गृहस्थ-'वृत्ति' है — गृहस्थ-'धर्म' नहीं। पर याद रखना चाहिये कि गृहस्थ-वृत्ति यानी प्रजा-वृद्धिका काम तो दुनियामें सभी कोअी करते हैं। धर्ममें मर्यादा, विवेक वगैरा होते हैं। अिसलिअे जो दम्पति मर्यादा और विवेकके साथ रहते हैं, वे गृहस्थका धर्म पालते हैं। जो मर्यादाके बिना चलते हैं, वे फर्ज अदा करनेवाले नहीं, बल्कि स्वेच्छाचारी हैं; और आजकी गृहस्थ-वृत्ति तो ज्यादातर मनमानी और व्यभिचारका ही पोषण करती है। व्यभिचारी या स्वेच्छाचारी जीवनके बाद वानप्रस्थ और संन्यास नामुमकिन समझना चाहिये।

अिससे यही मानना चाहिये कि आश्रम-धर्म तो मिट ही गया। अुस धर्मको फिरसे अूंचा अुठाना जरूरी है। यह किस तरह हो सकता है, अिसका विचार करना अिस प्रस्तावनाके क्षेत्रके बाहर है।

अब वर्ण-धर्म पर आयें। असलमें वर्ण चार माने गये हैं। अैसा कह सकते हैं कि आज तो वर्ण बेशुमार हैं। फिर भी लोग अपनेको चार वर्णोंमें गिना सकते हैं। कोअी अपनेको ब्राह्मण कहता है, कोअी क्षत्रिय और कोअी वैश्य। अपनेको शूद्र बतानेमें सबको शर्म आती है। शूद्र अपना परिचय अुपजातियोंसे ही देते हैं। तीन वर्णोंमें भी अुपजातियां हैं, मगर अुन्हें अपनेको ब्राह्मण वगैरा बतानेमें शर्म नहीं आती। अिस तरह वर्ण नामके ही रह गये हैं।

लेकिन मनुष्य अपनेको कोअी विशेषण लगा ले, तो अुसीसे वह अुसके लायक नहीं बन जाता। काले रंगका आदमी अपना रंग लाल कहे तो लाल नहीं हो सकता। अिसी तरह अपनेको ब्राह्मण बताकर कोअी ब्राह्मण बन या रह नहीं सकता। ब्राह्मण होनेकी आखिरी कसौटी पर तो वह तब खरा अुतर सकता है, जब ब्राह्मणके गुण अपनेमें मूर्तिमंत कर ले। अिस तरह सोचने पर हम देखेंगे कि वर्ण-धर्म भी मिट गया है। व्यवहारमें हम 'वर्ण' नाम रख सकते हों तो यह समझा जा सकता है कि हम सब शूद्र हैं। लेकिन असलमें तो हम शूद्र भी नहीं माने जा सकते, क्योंकि धर्मशास्त्रमें तो वर्णको धर्म माना है। अिसलिअे शूद्र वर्ण भी धर्म है। और धर्म तो अपनी मरजीसे मंजूर किया जाता है। अुसके पालनमें शर्मकी गुंजाअिश ही नहीं है। धर्मके तौर पर शूद्रपनका अमल करनेवाले कितने नजर आयेंगे? दिनोंके फेरसे हम शूद्रपनको पहुंच गये हैं। कोअी यह कहे कि वर्णोंके करनेके काम तो होते ही रहते हैं, अिसलिअे वर्ण-धर्म नहीं मिटा है। वे कहेंगे कि जो आदमी जिस वर्णका काम करता है, वह अुसी वर्णका गिना जायगा। मेरे खयालसे यह वर्ण-धर्म नहीं है। जहां काममें मिलावट हो और सब अपनी अपनी मरजीसे जो अच्छा लगे वही करें, तो मैं अुसे वर्णका संकर हुआ मानूंगा। वर्णका जन्मके साथ अनिवार्य नहीं तो बहुत नजदीकका सम्बन्ध अवश्य है। जो जिस वर्णमें

पैदा हो, वह अुस वर्णके काम धर्मभावनाके साथ करे, तो वह वर्ण-धर्म पालता है। अिस तरह धर्म पालनेवाले आज अुंगलियों पर गिने जा सकते हैं। वर्ण-धर्मके पालनमें स्वार्थकी गुंजाअिश नहीं, या वह गौण है। वर्ण-धर्ममें तो परमार्थ ही हो सकता है, या फिर अुसका मुख्य स्थान हो। ब्राह्मण ब्रह्मको जानने और बतानेमें ही वक्त लगाये और यह माने कि अुसका गुजर भगवान चलाता है। क्षत्रिय प्रजाके पालनका फर्ज अदा करे और अुसके बदलेमें गुजारेके लिअे हदके भीतर खर्च ले। वैश्य जनताकी भलाअीके लिअे खेती, गायकी परवरिश और व्यापार करे; जो रुपया मिले अुसमें से सच्चा वैश्य अपने गुजरके लायक रखकर बाकीको लोगोंकी भलाअीमें लगा दे। अिसी तरह शूद्र सेवा करे तो धर्म समझकर करे।

आम तौर पर वर्णका निर्णय जन्मसे किया जाता है। अेक हद तक कर्मसे भी किया जाता है। ब्राह्मणका लड़का ब्राह्मणके घर पैदा होकर ब्राह्मण तो कहलायेगा, मगर बड़ा होने पर अुसमें ब्राह्मणके लक्षण या गुण न दिखें तो वह ब्राह्मण नहीं माना जायगा। वह तो पतित हुआ। अिससे अुलटा, जो दूसरे वर्णमें पैदा होकर ब्राह्मणके लक्षण साफ साफ और रोज बताया करेगा, वह भले ही खुदको ब्राह्मण न कहे तो भी ब्राह्मण माननेके लायक होगा। दुनिया अुसे ब्राह्मण ही मानेगी।

अिस धर्मके मुताबिक अगर दुनिया चले तो सब जगह सन्तोष फैले, झूठी होड़ मिटे, अीर्ष्या दूर हो, कोअी भूखों न मरे, जन्म-मरण बराबर रहें और बीमारियां जाती रहें।

लेकिन वर्ण अगर धर्म बन जाय और अधिकार न रहे, तो वर्ण वर्णके बीच भेद न रहे और सब वर्ण बराबर हो जायं। बहुत समयसे हिन्दू-धर्मके नाम पर अूंच-नीचके भेद घुस गये हैं। यह वर्ण-धर्मका टेढ़ा-मेढ़ा रूप है, भयंकर रूप है। हमारे पुरखोंने कठिन तपस्यासे जिस बड़े कानूनको ढूंढ़ निकाला था और जिस पर भरसक अमल किया था, अुसका अनर्थ करके आज हमने अुसे दुनियाके लिअे हंसीकी चीज बना दिया है। नतीजा यह है कि आज हिन्दुओंमें भी अैसा फिरका निकल पड़ा है जो वर्ण-व्यवस्थाका नाश करने पर तुला हुआ है, क्योंकि वह मानता है कि वर्णसे हिन्दू जाति पामाल हुअी है।

और आज वर्णके नाम पर जो हालत पाअी जाती है, अुसमें तो हिन्दू जातिका नाश ही है।

आज रोटी-बेटीके व्यवहारकी हदबन्दीमें वर्ण-धर्मका पालन समाया हुआ है। ब्राह्मण ब्राह्मणके साथ और अुसमें भी कट्टर हो तो अपनी अुपजातिके साथ ही रोटी-बेटी-व्यवहार रखेगा और अुसीमें अपने धर्मकी अितिश्री मानेगा। अुत्तरमें कहावत है कि 'आठ कनौजिये नौ चूल्हे'। यह है धर्मपालन! सब अेक-दूसरेके छूनेसे नापाक हो जाते हैं। अिसी तरह खाने-पीनेके बारेमें जो विवेक रखा जाता है, अुसे भी वर्ण-धर्मका अंग मानकर ब्राह्मणपन या क्षत्रियपन वगैराका अन्त अिसीमें समझा जाता है कि फलां चीज खाअी जाय या न खाअी जाय। फिर क्या अचरज कि दुनिया अैसे धर्मको दुत-कारती है और कितने ही समझदार हिन्दू भी अिस अव्यवस्थाको मिटाने पर तुले हुअे हैं!

यहां मेरे कहनेका मतलब यह बिलकुल नहीं कि रोटी-बेटी-व्यवहारकी मर्यादा या खानपानके विवेककी गुंजाअिश ही नहीं है। मैं खुद हर किसीके साथ सब कुछ खानेका धर्म न मानता हूं, न पालता हूं। हर किसीके साथ बेटा-बेटी लेने-देनेको मनमानी समझता हूं। जिस तरह हर व्यवहारमें कड़ी मर्यादा या संयम जरूरी है, अुसी तरह अिसमें भी जरूरी है। मेरा अैसा मानना है कि खाद्याखाद्यका भी शास्त्र है। मनुष्य सब कुछ खानेवाला प्राणी नहीं है। अुसके खानेकी चीजोंकी भी हद है। लेकिन रोटी-बेटी-व्यवहार और खानपानके विवेक पर वर्ण-धर्मका दारमदार नहीं है। वर्ण-धर्म अेक अलग ही शास्त्र है। मैं यह कल्पना कर सकता हूं कि अेक वर्णकी दूसरे वर्णमें शादी करनेमें कोअी बुराअी नहीं है। मैं मानता हूं कि सफाअी वगैराके नियमोंको पालते हुअे और खानपानमें विवेक करते हुअे सब वर्णके लोग अेक पंगतमें बैठकर खायें तो कोअी दोष नहीं है। पुराने जमानेमें अिस तरह रोटी-बेटी-व्यवहार होनेके बहुतसे सबूत हैं। रोटी-बेटी-व्यवहारको वर्ण-धर्मके साथ जोड़ देनेसे हिन्दू-धर्मको भारी नुकसान पहुंचा है।

यह सही है कि वर्ण-धर्मकी खोज हिन्दू-धर्ममें हुअी है, मगर अिससे कोअी यह न माने कि ये नियम हिन्दुओंको ही लागू होते हैं

और दूसरोंको नहीं होते। हर धर्ममें कोअी न कोअी विशेषता होती ही है। मगर यह विशेषता अुसूलके तौर पर हो तो वह सब जगह फैल जानी चाहिये। दुनिया भले ही आज अुसे न माने। अुतनी ही वह घाटेमें रहेगी। वर्ण-धर्मके बारेमें मेरी यह मान्यता है। अिसे मैं अेक बड़ी भारी खोज मानता हूं। आज नहीं तो कल दुनियाको अुसे मानना ही होगा।

अिस अुसूलको मैं थोड़ेमें अिस तरह रखता हूं : जो आदमी जिस खानदानमें पैदा हो अुसका धंधा, अगर वह नीतिके खिलाफ न हो तो, धर्मभावसे करे और अुसे करते हुअे जो आमदनी हो, अुसमें से मामूली गुजरके लायक रखकर बाकीको सार्वजनिक भलाअीमें लगाये।

चार वर्णोंको वेदमें शरीरके चार अंगोंकी अुपमा दी गअी है। शरीरके अंगोंमें जैसे यह भेद नहीं होता कि अेक अूंच और दूसरा नीच है; और अंगोंमें समझ हो और अूंचनीचका भेद वे रखें, तो शरीररूपी राष्ट्रके टुकड़े टुकड़े हो जायं। अिसी तरह जगतका राष्ट्र भी अपने वर्णरूपी चार अंगोंके बीच अूंचनीचका भेदभाव रखे तो टुकड़े टुकड़े हो जाय। आज जगतमें अूंचनीचके भेद हैं, और जगतमें जो आपसी झगड़ा चल रहा है, अुसके वे खास कारण हैं। अिस बातको समझनेमें मामूली आदमीको भी मुश्किल न होनी चाहिये कि यह लड़ाअी वर्ण-धर्म पर चलनेसे मिट सकती है। वर्ण-धर्ममें हर वर्णको अपना अपना काम धर्म समझकर करना है। पेट भरना तो अिसका थोड़ासा फल है। यह मिले या न मिले तो भी चारों वर्णोंको अपने अपने धर्ममें लगे रहना है। अिस वर्ण-धर्म पर अमल हो, तो आजकल दुनियामें जो अूंच-नीचपन मौजूद है, अुसकी जगह बराबरीका बोलबाला रहे, सारे धंधे अिज्जत और कीमत दोनोंमें अेकसे समझे जायें, और मंत्री, वकील, डॉक्टर, व्यापारी, चमार, बढ़अी, भंगी और ब्राह्मण बराबर-बराबर कमायें। जहां वर्ण-धर्म पाला जाता हो वहां अैसी दया अुपजानेवाली हालत हो ही नहीं सकती, न होनी ही चाहिये कि तीन वर्ण ज्यादा कमायें और शूद्र थोड़ा कमाये, या क्षत्रिय महलोंमें चढ़कर बैठें, ब्राह्मण भिखारी यानी झोंपड़ेमें रहे, वैश्य बड़ी बड़ी हवेलियां बनायें और शूद्र बिना घरबारके गुलाम बनकर रहें।

मेरे कहनेका मतलब यह नहीं कि जिस वक्त वर्णाश्रम-धर्म खोज निकाला गया था, अुस वक्त भी हिन्दू समाज अिस आदर्श तक पहुंच गया था। मुझे मालूम नहीं कि किस समय वर्ण-धर्म अिस अूंचे दर्जे तक पहुंचा था। मगर मैं अितना कह सकता हूं कि वर्ण-धर्मका आदर्श यही हो सकता है। समझदारके लिअे अिस धर्म पर चलना सहल है। अैसा वर्ण-धर्म सिर्फ हिन्दुओंके लिअे ही नहीं, बल्कि सारी दुनियाके समझदार लोगोंके लिअे है।

अिस व्यवस्थामें जिसके पास जो जायदाद होगी, अुसका वह सारी जनताके लिअे रक्षक होगा। वह अपनेको कभी अुसका मालिक नहीं मानेगा। राजा अपने महलका या प्रजासे जो कर वसूल करता है अुसका मालिक नहीं बल्कि रक्षक है। वह अपने लिअे पेटभर लेकर बाकीको प्रजाके लिअे खर्च करनेको बंधा हुआ है। यानी प्रजासे वह जितना लेगा अुसमें अपनी होशियारीसे बढ़ती करके अुसी प्रजाको किसी न किसी तरह लौटा देगा। यही बात वैश्यकी है। शूद्रका तो कहना ही क्या। और अगर किसी भी तरह मुकाबला किया जा सकता हो तो जो शूद्र सिर्फ धर्म समझकर सेवा ही करता है, जिसके पास कोअी जायदाद कभी होनेवाली ही नहीं और जिसे मालिक बननेका लालच तक नहीं, वह हजार नमस्कारके लायक है और सबसे अूंचा है। धर्म पर चलनेवाला शूद्र अपने बारेमें अैसा न समझेगा, लेकिन देवता तो अुस पर फूल बरसायेंगे। यह वाक्य आजकलके सेवा करनेवालोंके बारेमें भले ही शोभा न दे। वे चप्पाभर जमीनके मालिक न होकर भी मालिकी चाहते हैं। यानी वे अपने शूद्रपनको सुख देनेवाले धर्मके तौर पर नहीं देखते, बल्कि भोगकी अिच्छा पूरी न होनेसे दुःखदायी समझते हैं। अिसीलिअे मैंने तो आदर्श शूद्रको प्रणाम किया है, और मैं दुनियासे कहता हूं कि वह भी अुसके सामने सिर झुकाये।

लेकिन यह शूद्रका धर्म अुस पर लादा नहीं जा सकता। तीन वर्ण अपनेको प्रजाके सेवक मानते हों और जो जायदाद अुनके पास रहे अुसके सबकी भलाअीके लिअे अपनेको रक्षक साबित कर सकते हों, तो ही अुनके मुंहसे शूद्र धर्मकी बड़ाअी अच्छी लग सकती

है। आज तो जहां तीन वर्ण सिर्फ नामके रह गये हैं, अपना धर्म पालनेकी किसीको सूझती नहीं और अपनेको अूंचे वर्णका मानकर शूद्रको हलके वर्णका समझते हैं, वहां अिसमें कोअी अचरजकी बात नहीं, दुःखकी बात भी नहीं कि शूद्र अुनसे अीर्ष्या करें और जो सम्पत्ति लेकर वे बैठ गये हैं अुसमें हिस्सा बंटाना चाहें। वर्णको धर्मके तौर पर बताकर शोधकोंने अैसा सुझाया है कि वर्ण-धर्म पर अमल करनेमें जबरदस्तीकी बू तक नहीं आनी चाहिये। वर्ण-धर्मको पालनेसे ही दुनियाका काम चल सकता है। अिस धर्मका पालन करनेसे ही जगतका छुटकारा है। और अिस धर्म पर अमल करानेके लिअे हर वर्णको खुद अुस पर अमल करते करते मर जाना है; दूसरोंसे जबरदस्ती अमल नहीं कराना है।

जहां होड़ बहुत अच्छी चीज समझी जाती है, रुपया कमाना बहुत बड़ा काम माना जाता है, जहां सब जैसा जीमें आये वैसा धंधा करनेकी अपने लिअे छूट मानते हैं और जहां सब जिस माली हालतमें वे हैं अुससे ज्यादा अच्छी कर लेना अपना धर्म समझते हैं, अैसे जमानेमें यह कहना कि वर्ण-धर्म जगतका बहुत बड़ा नियम है हंसीके लायक बात मालूम देती होगी। अिसको फिरसे अूंचा अुठानेकी बात करना अिससे भी ज्यादा दिल्लगी मानी जा सकती है। फिर भी मुझे पक्का भरोसा है कि आजकलकी भाषामें कहें तो यही सच्चा साम्यवाद है। गीताकी भाषामें यह बराबरीका 'धर्म' है, पर 'वाद' नहीं। अिस धर्म पर थोड़ा अमल करनेसे भी अमल करनेवालेको और दुनियाको सुख मिलता है।

यहां यह कहना जरूरी है कि वर्ण-धर्मका यह लाजिमी अंग नहीं कि वर्ण चार ही होने चाहिये; सिर्फ अितना ही कहना काफी है कि सब अपने अपने वर्ण-धर्मका अमल करके अुसीमें से रोजी निकाल लें। वर्ण-धर्मको फिरसे अुठानेका विचार करते हुअे शायद अैसा मालूम पड़े कि वर्ण चार नहीं बल्कि ज्यादा या कम होने चाहिये, तो मुझे खुदको अचंभा नहीं होगा।

वर्धा, २३–९–'३४

मो० क० गांधी

अनुक्रमणिका

दूसरा भाग : जाति और कुरीतियां

परिशिष्ट

वर्ण-व्यवस्था

पहला भाग

वर्ण और अुसके धर्म

१

वर्ण-व्यवस्था

दक्षिणकी अपनी यात्राके दरमियान वर्ण-व्यवस्था और ब्राह्मण-अब्राह्मण वगैरा जात-पांतके बारेमें मैंने जो खयाल जाहिर किये थे, अुनकी वजहसे मुझे बहुतसे गुस्सेसे भरे हुअे खत मिल रहे हैं। अुन खतोंको मैं यहां नहीं छापता, क्योंकि अुनमें सिवा गालियां देनेके शायद ही और कुछ होता है। जिनमें गालियां नहीं होतीं अुनमें भी कोअी दलील नहीं रहती। चिढ़ तो कोअी दलील नहीं कही जा सकती।

फिर भी कुछ पत्रोंसे अुठनेवाली दलीलोंका जवाब देना जरूरी है। कुछ लोग कहते हैं कि जात-पांत कायम रखनेसे हिन्दुस्तानका सत्यानाश होगा, क्योंकि जात-पांतके भेदने ही हिन्दुस्तानको गुलामीमें डुबाया है। मेरी नजरमें हमारी आजकी गिरी हुअी हालतकी जड़में हमारी जात-पांतका भेद नहीं है। हमारे गलेमें गुलामी अिसलिअे आयी कि हमने अपने लालचके बस होकर राष्ट्रीय गुण बढ़ानेकी तरफ लापरवाही रखी। मैं तो अुलटे यह मानता हूं कि वर्ण-व्यवस्थाने अेक हद तक हिन्दू-समाजको टुकड़े-टुकड़े होनेसे बचाया है।

लेकिन दूसरी संस्थाओंके साथ-साथ अिस संस्थामें भी अतिने घुसकर भारी नुकसान किया है। वर्ण-व्यवस्थामें बुनियादी तौर पर सोची गअी समाजकी चौमुखी रचना या बनावट ही मुझे तो असली, कुदरती और जरूरी चीज दीखती है। बेशुमार जातियों और अुप-जातियोंसे कभी-कभी कुछ आसानी हुअी होगी, लेकिन अिसमें शक नहीं कि ज्यादातर तो जातियोंसे अड़चन ही पैदा होती है। अैसी अुपजातियां जितनी जल्दी अेक हो जायं अुतना ही अुसमें समाजका भला है। अुपजातियोंमें अिस तरहकी दिखाअी न देनेवाली जोड़-तोड़ और नअी रचना शुरूसे होती आ रही है, और होती ही रहेगी। लोकमत और जनताके नैतिक दबावका असर यह काम कर लेनेके लिअे

काफी है। लेकिन असली वर्ण-विभागको ही जड़से नष्ट करनेकी किसी भी कोशिशका मैं अवश्य विरोध करूंगा।

वर्ण-विभागमें भेदभाव, असमानता या अूंच-नीचपन तो किसी तरहका है ही नहीं; और मद्रास या दक्षिण-जैसे प्रान्तोंमें जहां अैसे भेद पैदा होने लगे हैं, वहां अुन्हें जरूर रोकना चाहिये। लेकिन अिसके अैसे कभी-कभी होनेवाले दुरुपयोगके कारण सारी व्यवस्थाको मौतकी सजा नहीं दी जा सकती। अिसमें आसानीसे सुधार हो सकता है। हिन्दुस्तानमें और सारी दुनियामें आज देखते-देखते जो लोकयुग फैल रहा है, अुसके असरसे हिन्दू जातियोंमें भी अूंच-नीचके खयाल अपने-आप मिट जायेंगे। सिर्फ बाहरी अंगोंको तोड़ देनेसे लोकयुग नहीं फैलता। यह कोअी गणितका सवाल नहीं कि सरलतासे हिसाब बैठ जाय। अिसकी गुत्थियां सुलझानेके लिअे दिलोंमें तब्दीली होनी चाहिये, समाजकी वृत्तिका झुकाव बदलना चाहिये। अगर राष्ट्र-भावनाके या कौमी खयालके फैलावमें जात-पांत अेक रुकावट हो, तो हिन्दुस्तानमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, अीसाअी और यहूदी वगैरा धर्मोंका अेक साथ होना भी रुकावट ही है। लोकसत्ता और राष्ट्रीयताकी भावना तो आपसके भाअीचारे पर ही पनपती है। और आज अेक अीसाअी या मुसलमानको सगा मां-जाया भाअी माननेमें मुझे तो किसी तरहकी अड़चन मालूम नहीं होती। हमें यह कभी न भूलना चाहिये कि जिस हिन्दू-धर्मने वर्ण-व्यवस्था पैदा की है, अुसी हिन्दू-धर्मने मनुष्यकी सबसे अूंची भलाअी साधनेके लिअे हमें सिर्फ अिन्सानोंके साथ ही नहीं, बल्कि जीवमात्रके साथ अपनापन साधनेका आदर्श भी दिया है।

अेक भाअी सुझाते हैं कि हमें अपनी वर्ण-व्यवस्था तोड़कर यूरोपकी वर्ण-व्यवस्था मंजूर कर लेनी चाहिये। यानी मेरे खयालसे वे यह कहना चाहते हैं कि हमारी वर्ण-व्यवस्थामें पीढ़ी-दर-पीढ़ीकी जो भावना है, सिर्फ अुसीको आज हमें नष्ट करना है। मुझे तो लगता है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ीका अुसूल हमेशासे रहा है और रहेगा। अुसे बदलनेकी कोशिशसे सदा गड़बड़ पैदा हुअी है, और होगी ही। अेक

ब्राह्मणको अुम्रभर ब्राह्मण ही माननेमें मैं तो बहुत फायदा देखता हूं। अगर वह ब्राह्मणको शोभनेवाले तरीके पर न चले, तो वह अपने-आप सच्चे ब्राह्मणको मिलनेवाली अिज्जत खो बैठेगा। यह साफ है कि हम रोज-रोज व्यक्तियोंके हर कामकी अच्छाअी-बुराअीका हिसाब निकालकर अुसके अनुसार हर वक्त व्यक्तियोंको सजा या अिनाम देने बैठेंगे, और रोज-रोज ब्राह्मणको शूद्रकी और शूद्रको ब्राह्मणकी पदवी देने लगेंगे तो मुश्किलोंका पार न रहेगा। जो हिन्दू पुनर्जन्मको माननेवाले हैं — और हरअेक हिन्दू पुनर्जन्मको माननेवाला होना ही चाहिये — अुन्हें यही मानना पड़ेगा कि कुदरत किसी भी तरहकी भूल किये बिना बुरे काम करनेवाले ब्राह्मणको मानव अुन्नतिके निचले दरजे पर डालेगी, और अिसी तरह अिस जन्ममें ब्राह्मणकी जिन्दगी बितानेवालेको ब्राह्मणके दरजे पर पहुंचाये बिना न रहेगी।

अब रोटी-बेटी-व्यवहारके बारेमें जांच करें। मैं मानता हूं कि अेकराष्ट्रीयताके भावको फैलानेके खातिर अेक थालीमें खाना या चाहे जिसके साथ शादी करनेकी छूट लेना जरूरी नहीं। मैं यह नहीं मानता कि किसी कितने ही आजाद जमानेमें या स्वतंत्र विधानमें समाजके सभी लोगोंमें खाने-पीने या शादी-ब्याहके बारेमें अेकसा आचार-व्यवहार होगा। समाजके जुदा-जुदा वर्गोंमें आचार-व्यवहार अलग-अलग तरहके होंगे ही। अिस विविधताके बीचमें ही हमें हमेशा अेकता ढूंढ़नी और कायम करनी होगी। और मैं यह कहनेके लिअे तैयार नहीं कि जो आदमी सब किसीके साथ खाने-पीनेमें हर्ज समझता है, वह पाप करता है। हिन्दुओंमें भाअी-भाअीके बच्चे अेक-दूसरेके साथ ब्याहे नहीं जाते। अिससे अुनके आपसके प्रेममें खलल नहीं पड़ता। अुलटे, अुनका यह रिवाज अुनके आपसी संबंधको और भी पवित्र और शुद्ध बनाता है। वैष्णवोंमें मैंने बहुत-सी माताओंको देखा है, जो मर्यादा पालती हैं और घरकी रसोअीमें नहीं खातीं या घरके आम मटकेका पानी नहीं पीतीं। अिससे अुनमें खुदगरजी या अुद्धतता आती या अुनका प्रेम और ममता घटती नहीं देखी गअी। ये बातें सिर्फ संयम और तालीमसे संबंध रखती हैं। खुद अिनमें कोअी खास दोष नहीं है।

अिसमें अति घुस जाय, तो वह जरूर नुकसानदेह हो सकती है। और तिस पर भी अगर अूंचेपनके घमण्डसे वैसा किया जाय, तो वह संयम संयम न रहकर दरअसल मनमानी ही बन जाता है और अिस कारण घातक साबित होता है। मगर जमाना जैसे-जैसे आगे बढ़ता जायगा, और नअी-नअी जरूरतें और बातें पैदा होती जायंगी, वैसे-वैसे रोटी-बेटी-व्यवहारके बारेमें भी बहुत ही सावधानीके साथ हमें सुधार और फेरफार अवश्य करने पड़ेंगे।

अिस तरह मैं हिन्दू वर्ण-व्यवस्थाकी हिमायत करता हूं, हमेशा करता आया हूं; और फिर भी मैं कहता हूं कि हिन्दुओंमें जड़ जमाकर बैठी हुअी अछूतपनकी भावना मानव-जातिका घोर-से-घोर अपमान है। अिस भावनाकी जड़में संयम नहीं, बल्कि अूंचेपनकी अुद्धत भावना ही है। अिस भावनाने अपनी किसी भी तरहकी योग्यता नहीं बताअी; अुलटे जो लोग किसी भी बातमें अलग नहीं हैं, और जो कअी तरहसे समाजकी भारी सेवा कर रहे हैं, अैसे मनुष्योंके अेक बहुत बड़े समूहको हमने मनुष्य-जातिमें से निकाल डालनेका घोर पाप किया है। अिस पापमें से हिन्दू-धर्म जितनी जल्दी बचकर निकल जाय, अुतना ही अुसका बड़प्पन और प्रतिष्ठा है। अिस हीन भावनाको कायम रखनेके पक्षमें अेक भी दलील मुझे अभी तक नहीं मिली। और अैसी पापपूर्ण प्रथाकी हिमायत करनेवाले शास्त्रोंके वचनोंको — जिनके सही होनेमें शक है — रद्द करनेमें मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती। अलबत्ता, प्रौढ़ बुद्धि और आत्माकी आवाजके खिलाफ जानेवाली शास्त्रकी किसी भी हिदायतके आगे सिर झुकानेसे मैं अिनकार करूंगा। शास्त्रका प्रमाण जब बुद्धिके पाये प्रर खड़ा होता है, तब वह कमजोरोंके लिअे मददगार साबित होता है और अुन्हें अूंचा अुठाता है। लेकिन जब वह आत्माकी गहराअीमें से आनेवाली पुकारसे पवित्र हुअी बुद्धिके तकाजेको पूरा करनेसे अिनकार करता है, और अुसकी जगह ही रोक देना चाहता है, तब वह अिन्सानको नीचे गिराता है।

नवजीवन, १२–१२–'२०

२

वर्णसंकर या वर्णाश्रम?

अेक पढ़ी-लिखी बहन लिखती हैं:

"सफरमें अेक भाअीसे मेरा साथ हो गया। अुन्होंने वरतेजमें हुअी राजपूत-परिषद्को भेजे हुअे आपके संदेश* की तरफ मेरा ध्यान खींचा। पढ़कर मनके भीतर बहुत दिनोंसे दबा हुआ विरोध अुभर आया। जो सोच-विचार करे वही मनुष्य है। अिसलिअे मुझे आशा है कि मेरे विचारको आप सह लेंगे, और वह आपके विचारसे भिन्न हो तो भी अुस पर ध्यान देंगे। सन् १९२० में आश्रम और अुसका बुनाअी-घर देखकर मनमें ये विचार आये थे। बादमें जाते रहे, मगर कभी-कभी दिखाअी दे जाते थे। पर अभी थोड़े दिन हुअे ये विचार मेरे मनमें हमेशाके लिअे घर कर बैठे हैं, और राजपूत-परिषद्को भेजा गया आपका संदेश अिनके अुभारका आखिरी निमित्त बना है।

"जहां सारा स्टेशन अेक सिरेसे दूसरे सिरे तक फौजी ढंगसे कंधे पर लटकती हुअी तलवारोंवाले स्वयंसेवकोंसे भरा हुआ था, जहांका सारा वातावरण क्षत्रिय जातिकी बहादुरी और दाक्षिण्यकी यादसे गूंजता था, वहां अुन्हें तलवारोंकी जगह चरखेको देनेकी आपकी सलाह क्या अीसाअी पादरियों-जैसी ही बिलकुल बेमौजूं न थी? क्या आपको पुराने जमानेके अृषियोंकी तरह ब्राह्मणको ज्यादा सच्चा ब्राह्मण, क्षत्रियको आदर्श क्षत्रिय और वैश्यको सच्चा वैश्य बननेकी सलाह नहीं देनी चाहिये? ब्राह्मणकी निशानी पोथी या कलम है, राजपूतकी तलवार और वैश्यकी चरखा या हल है। आप भले ही अपनेको जुलाहा

* देखिये 'क्षत्रियका धर्म' शीर्षक लेख: प्रकरण १८।

या किसान कहनेमें अभिमान समझें। अैसा करनेमें आप अपने जातिधर्मके कुदरती झुकावकी ही वफादारी करते हैं। लेकिन आपके-जैसा वर्णाश्रमको माननेवाला हिन्दू ब्राह्मणों और क्षत्रियोंसे अपने कुदरती जातिधर्म छुड़ाकर वैश्यधर्म मनवानेका किसलिअे अितना आग्रह करता है? क्या वैश्यवृत्ति अख्तियार किये बगैर आज क्षत्रिय गरीबोंका बचाव और सेवा कर ही नहीं सकते?

"भारतवर्षके महापुरुषोंने तो हमेशा हर आदमीको अुसके स्वभावके मुताबिक अपना फर्ज अदा करना ही सिखाया है। आपने ही पहले-पहल अिन सब फर्जोंको ताकमें रखकर सारे राष्ट्रको अेक वैश्यवृत्ति ही अख्तियार करनेका अुपदेश देना शुरू किया है। वैश्यधर्मको आप भले ही अूंचा अुठाअिये, लेकिन कृपा करके ब्राह्मण-क्षत्रियोंको पीछे न धकेलिये। आप अपनी जातिको भले ही आध्यात्मिक बनायें, मगर दूसरी जातिवालोंको अपनी विभूतिके बल पर लुभाकर जुलाहे और पिंजारे बना-बनाकर दुनियावी किसलिअे बना रहे हैं? मेरी रायमें तो अपने आश्रमके विनोबा और बालकोबाको आपने जिस किस्मका आध्यात्मिक जुलाहा बनाया है, अुसके बजाय वे शुद्ध ब्राह्मण रहे होते और अपनी मेधाका पूरी तरह विकास करते, तो वे राष्ट्रकी ज्यादा ठोस सेवा करते।"

यहां मैंने सारा खत नहीं दिया है, पर अुसका सार दे दिया है। बाकीके हिस्सेमें अूपर जो कुछ दिया है अुसकी छान-बीन ही है। लिखनेवाली शिक्षित बहन जन्मसे हिन्दू हैं, और मेरी तरह वे भी हिन्दू होनेका दावा करती हैं। कातनेको मैंने सम्प्रदायोंके धर्मोंसे श्रेष्ठ धर्म माना है। मैंने यह आशा रखी थी कि महज अिसीलिअे विद्वान मित्र अिसका कोअी गलत अर्थ नहीं करेंगे। पर वैसा होना बदा न था। अूपरकी विदुषी बहिन बताती हैं कि चरखेका विरोध करनेवाली वे अकेली नहीं हैं। अिसलिअे मुझे अुनकी दलीलोंकी जांच धीरजके साथ करनी होगी।

सन् १९०४ से आज तकके अखबार चलानेके अपने अनुभवसे मैंने देखा है कि अखबारोंके सम्पादकोंके पास आनेवाले संवादोंमें ज्यादातर टीका विरोधीकी बातके बारेमें पूरी जानकारी न होनेसे ही होती है। अिस अुदाहरणमें अिन बहनको समझना चाहिये था कि चरखेका संदेश मैंने अकेले अिस देशके हिन्दुओंको ही नहीं दिया है। यह संदेश तो स्त्री, पुरुष, मुसलमान, पारसी, ओसाओ, यहूदी, सिक्ख और अिसी तरह किसी भी अपवादके बिना अपनेको हिन्दुस्तानी कहलानेवाले हिन्दुस्तानके हरअेक निवासीके लिअे है। अितनी बात ये बहन याद रखतीं, तो मैं मानता हूं कि अुनकी टीका दूसरी ही तरह लिखी जाती। तब वे देखतीं कि मैंने तो हिन्दुस्तानके हाथमें अेक अैसी चीज रखी है, जो किसीके धर्मके आड़े नहीं आती, बल्कि अुलटे जिस हद तक अुसे अपनाया जाय अुस हद तक वह अुस-अुस धर्मको और हिन्दू-धर्मके अुस-अुस वर्ण या जातिको अुज्ज्वल करनेवाली है। अिसलिअे मेरा दावा है कि मेरा तरीका वर्णको बिगाड़नेवाला नहीं, बल्कि अुसे शुद्ध करनेवाला है। मैं किसीसे स्वधर्म या बाप-दादोंका धन्धा छोड़नेको नहीं कहता। मैं तो यह कहता हूं कि सब अपने-अपने कुदरती पेशेमें चरखेको और जोड़ दें। काठियावाड़के राजपूत अिस बातको जानते थे। अुन्होंने मुझसे पूछा था कि क्या मैं अुन्हें अपनी तलवारें रख देनेके लिअे कहता हूं? मैंने कहा — हरगिज नहीं। अुलटे मैंने तो अुनसे यह कहा कि जब तक आप अपनी ताकत पर भरोसा रखते हैं, तब तक आपमें से हरअेकको कभी धोखा न देनेवाली तलवार अवश्य बांधनी चाहिये। अलबत्ता, मैंने अुनसे यह भी कहा कि मेरी कल्पनाका आदर्श क्षत्रिय तो वह है, जो तलवार चलाये बिना बचानेका काम करे और बिना मारे अपना मोर्चा संभालता हुआ मरे। तलवार तो कोओी छीन भी सकता है; लेकिन बिना मारे मार सहकर मर जानेवालेकी वीरताको कौन छीन सकता है?

पर यह तो दूसरी बात हुओी। अूपरके सवालके जवाबमें तो यही कहूंगा कि राजपूतोंको कमजोरोंका बचाव करनेका अपना धंधा हरगिज नहीं छोड़ना चाहिये। अिसी तरह मैं यह नहीं चाहता कि ब्राह्मण भी

विद्या देनेका पेशा छोड़ दें। मैं तो अितना ही कहता हूं कि कताअी-रूपी यज्ञसे वे ज्यादा अच्छे गुरु बनेंगे। विनोबा और बालकोबाने कातनेवाले, बुननेवाले और पाखाने साफ करनेवाले बनना पसन्द करके अपने ब्राह्मणत्वका गौरव बढ़ाया है। वे आज अच्छे-से-अच्छे ब्राह्मण बन गये हैं। अुनका ज्ञान बहुत ठोस हो गया है। ब्राह्मण वह है, जिसने अीश्वरको पहचान लिया। मेरे अिन दोनों साथियोंने चरखेको अपनाकर हिन्दुस्तानके लाखों भूखोंके साथ जितनी हमदर्दी और अपनापन बढ़ाया है, अुतने ही वे आज अीश्वरके अधिक नजदीक हैं। अीश्वरका ज्ञान ग्रंथोंके पढ़नेसे नहीं होता। वह तो अपनी आत्माकी गहराअीमें, भीतर अनुभव किया जाता है। पुस्तकें तो ज्यादा-से-ज्यादा यही कर सकती हैं कि कभी कुछ मदद कर दें। वैसे अकसर तो वे रुकावट ही साबित होती हैं। अेक बड़े भारी विद्वान ब्राह्मणको अीश्वरका यथार्थ ज्ञान पानेके लिअे अेक धर्मात्मा कसाअीके पास जाना पड़ा था।

और फिर यह वर्णाश्रम भी क्या है? यह कोअी लोहेकी दीवारोंसे बनाया गया तंत्र नहीं। मेरी नजरमें तो यह अेक शास्त्रीय सचाअीको मंजूर करना है, फिर भले ही मंजूर करनेवाले अिसे जानते हों या न जानते हों। अिसका यह मतलब नहीं कि ब्राह्मण सिर्फ पढ़ने-पढ़ानेका काम करनेके लिअे है। अिसका मतलब यही है कि अुसमें यह वृत्ति प्रधान होनी चाहिये। जैसे, अगर कोअी ब्राह्मण शरीर-श्रमसे कतअी अिनकार करे तो सभी अुसे बेवकूफ कहेंगे। पुराने ॠषि जंगलोंमें रहते, अपने हाथों लकड़ी काटते, अुसके गट्ठर बांधकर सिर पर लाते, ढोर चराते और हथियार भी अुठाते थे। यह सब होने पर भी अुनका मुख्य धंधा अीश्वरी सत्यकी तलाश करना ही था। अिसी तरह अपढ़ क्षत्रिय, फिर वह कितना ही बड़ा तलवार चलानेवाला क्यों न हो, निकम्मा गिना जाता था। यही बात वैश्योंकी थी। अगर वे जीवनके विषयमें श्रेय और प्रेयका विवेक कर सकने जितना भी अध्यात्म-ज्ञान न रखते हों, तो वे समाजके सत्त्वको चूस लेनेवाले राक्षस ही माने जाने चाहिये। हम देखते हैं कि आजके वैश्य अैसे ही बन गये हैं, फिर भले वे

पश्चिमके हों या पूर्वके। गीताकी भाषामें तो 'अपने ही खातिर जीनेवाले ये पापी लोग राक्षसी नरक भोगनेके लायक' हैं। चरखेकी योजना तो चारों वर्णोंको — हरअेक हिन्दुस्तानीको अुसके अपने धर्मके प्रति जाग्रत करनेके लिअे है। अिसके जरिये हरअेक मनुष्यको अपना-अपना स्वधर्म ज्यादा अच्छी तरह पालनेकी प्रेरणा मिलेगी। जब जहाज शान्त पानी पर चलता है, तब अुस पर बैठे हुअे लोग अपने-अपने कामोंमें मस्त और मशगूल रहते हैं। पर जब बेड़ा तूफानमें फंसकर डगमगाने लगता है और डूबनेकी नौबत आ जाती है, तब तो सिर्फ बचावके ही जरूरी काममें जहाजके अेक-अेक आदमीको जी-तोड़ मेहनत करनी पड़ती है।

हम यह भी न भूलें कि सारी दुनियाके साथ-साथ हिन्दुस्तान भी आज जगद्व्यापी व्यापारकी शकलमें मौतके सांपकी घातक लपेटमें फंसा हुआ है। आज तराजू-बाटवाले सिपाहियोंकी जाति हम पर राज्य करनेका दावा कर रही है। अिस लपेटमें से छूटनेके लिअे आज हिन्दुस्तानको अपने अच्छे-से-अच्छे ब्राह्मणोंकी सारी बुद्धिमत्ता खर्च कर देनी होगी। अिस तरह हिन्दुस्तानके अेक-अेक बुद्धिमान आदमीकी और सिपाहीकी ताकत आज हिन्दुस्तानकी व्यापारिक भूख मिटानेके काममें लगा देनी पड़ेगी। और अपना यह धर्म वे पूरी तरह पाल सकें, अिसके लिअे आज अुन्हें कातना सीखनेकी और नियमसे कातनेकी जरूरत है।

अिसके सिवा, जिन्हें अीमानदारीसे अपनी रोटी कमानेकी अिच्छा है, अुन्हें भी रोजगारके तौर पर बुनाअीका धन्धा करनेकी सलाह देनेमें मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं होगी। साथ ही, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय या अिसी तरहके दूसरे लोग आज बाप-दादेका पेशा छोड़ कर धनके पीछे पागल हो गये हैं, अुन्हें भी मैं जुलाहेका यह प्रामाणिक और निःस्वार्थ (अुनके लिअे) धन्धा भेंट करता हूं, और हाथ-करघा जो थोड़ी-सी रोजी दे, अुसी पर सब्र करके अपने मूल धर्मकी तरफ लौटनेका निमंत्रण देता हूं। जिस तरह खाना, सोना वगैरा चीजें सभी वर्ण और सभी धर्मके माननेवालोंके लिअे अेकसी हैं, अुसी तरह जब तक स्वार्थी तृष्णा और अुससे पैदा होनेवाली

कंगाली हममें घर किये बैठी है, तब तक चरखा हरअेक वर्ण, कौम और धर्मके लिअे अेकसा जरूरी रहनेवाला ही है।

अिस तरह मेरा काम वर्णसंकर करनेका — यानी और ज्यादा गड़बड़ पैदा करनेका — नहीं, बल्कि वर्णाश्रमकी स्थापना करनेका, यानी शुद्धिके कामको ज्यादा मजबूत बनानेका है।

नवजीवन, २०–७–’२४

३

अूंच-नीचके भेदकी सड़न

नीचेकी हकीकतोंसे भरा पत्र मुझे मैमनसिंह जिला वैश्य-सभाकी तरफसे मिला था :

“बंगालके हिन्दुओंके दो खास हिस्से किये जा सकते हैं — (१) जिनके हाथका पानी पिया जाता है, और (२) जिनके हाथका पानी नहीं पिया जाता। पहलेमें ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ और नवशाखावाले हैं; दूसरेमें वैश्य-शाह, सुवर्ण-वणिक (सोनी), सूत्रधार (बढ़अी), जोगी (जुलाहे), शुण्डी (कलाल), माछी, भोअी, धोपा (धोबी), मोची, कापालिक, नामशूद्र वगैरा हैं। अिनमें से कुछको मर्दुमशुमारीमें दलित जातिका माना गया है।

“पहले भागके पहली तीन जातियोंका हिन्दुओंमें प्रभुत्व है और वे दूसरे भागमें बताअी हुअी जातियोंको हिकारतकी निगाहसे देखती हैं; अितना ही नहीं, बल्कि वे अुन्हें कअी तरहसे दुःख देती हैं। अुन्हें मन्दिरोंमें नहीं जाने दिया जाता, अुनके विद्यार्थियोंको बोर्डिंगोंमें रहने और खानेकी तकलीफें हैं, और अुन्हें होटलों और हलवाअियोंकी दुकानोंमें दूर-दूर रखा जाता है, वगैरा-वगैरा।

"बंगालमें अछूतपन दूर करनेवालोंका काम करनेका तरीका ठीक न होनेसे वे आगे नहीं बढ़ सकते। सन् १९२१ की मर्दुमशुमारीके अनुसार बंगालके हिन्दू २,०९,४०,००० से ज्यादा हैं। अिनमें से १७ फी सदी ब्राह्मण, १६ फी सदी कायस्थ और १० फी सदी वैश्य — अिस प्रकार कुल मिलाकर २८,०९,००० होते हैं।

"अब पूर्वी बंगाल और सिलहटकी वैश्य-शाह जाति, जो व्यापारमें सबसे आगे बढ़ी हुअी है, अकेली ही ३,६०,००० यानी बंगालके कुल हिन्दुओंका ३।। फी सदी है। अुनमें फी हजार ३४२ लिख-पढ़ सकते हैं, जब कि वैश्योंमें ६६२, ब्राह्मणोंमें ४८४, कायस्थोंमें ४१३, सुवर्ण-वणिकोंमें ३८३, और गंधर्व-वणिकोंमें फी हजार ३८४ पढ़े-लिखोंकी तादाद है। दूसरे सब आचरणीय वर्णोंमें, यानी जिनके हाथका पानी चलता है अुनमें, पढ़े-लिखोंकी तादाद बहुत कम है, तब अनाचरणीयों यानी जिनके हाथका पानी नहीं चलता अुनकी तो बात ही क्या करना?

"हमारी जाति कॉलेज, हाअीस्कूल, दवाखाने, बावड़ी और पक्के कुअें, वगैरा कअी संस्थाअें चलाती है। अिसी प्रकार दूसरी तरहके दान करनेमें भी वह पीछे नहीं है। आचार-विचार और मेहमानदारीमें भी किसी दूसरी जातिसे कम नहीं है। स्त्री-शिक्षामें भी पिछड़ी हुअी नहीं है। अितना होने पर भी हम हिन्दू-समाजके दायरेसे बाहर हैं; फिर, हम लोग किसी भी राष्ट्रीय कार्यसे कभी अलग नहीं रहे, फिर भी आज तक कभी हिन्दू-जातिने हमारा अुचित दरजा नहीं माना। अगर समाजकी पाबन्दियां हमारे मत्थे न हों, तो हम आजके मुकाबले कितने ज्यादा अुपयोगी बन जायं!

"शुण्डियों या कलालोंसे हम बिलकुल जुदा हैं, पर ये लोग भी अपनेको 'शाह' कहते हैं, अिससे तंगदिल हिन्दू हमें भी अुन्हींके साथ मिला देते हैं। हमने तो पूरी खोजबीन करके साबित कर दिया है कि हमारी जाति अुत्तरसे और पश्चिमी

हिन्दुस्तानसे आयी हुअी है, और जब ब्राह्मणोंके धर्मका फिरसे जोर बढ़ा, तब हम बौद्ध असरको पूरी तरह छोड़ नहीं सके थे, अिसीलिअे हिन्दू-समाजमें हमें अुचित स्थान नहीं मिला और हमसे नफरत की गयी।"

हो सकता है कि अूपरकी हकीकत कुछ बढ़ा-चढ़ाकर लिखी गअी हो, लेकिन मैंने अिसे यहां यह दिखानेको ही दिया है कि अूंच-नीचके भेदकी सड़न हिन्दू-धर्मके मर्मको किस तरह कुतरकर खा रही है। जिन्होंने यह हकीकत भेजी है अुन्हें वे लोग धिक्कारते हैं, जो अुनसे अूंचे कहलाते हैं, और ये खुद अपनेको अुन लोगोंसे अूंचा और अलग समझते हैं, जो अिनसे ज्यादा नीचे माने जाते हैं। अिस तरह नीचे समझे जानेवाले 'अछूतों' में भी अूंच-नीचका यह भेद फैला हुआ है। कच्छके सफरमें मैंने देखा कि हिन्दुस्तानके दूसरे भागोंकी तरह कच्छमें भी अछूतोंमें अूंचे और नीचेका फर्क है, और अूंची जातिके अछूत नीची जातिके अछूतोंको छूनेसे भी अिनकार करते हैं; यही नहीं, नीच जातिके अछूतोंके बच्चे जिस पाठशालामें जाते हों, अुस पाठशालामें वे अपने बच्चोंको भेजनेसे साफ अिनकार करते हैं। जहां यह हालत हो वहां आपसमें रोटी-बेटी-व्यवहारकी तो बात ही क्या की जाय? वर्णके भेदका जो भयंकर गलत अर्थ किया गया है, अुसीके ये नमूने हैं। और अेक वर्ग दूसरे वर्गसे अपनेको अूंचा माननेमें जो अभिमान करता है, अुसका विरोध करनेके लिअे मैं अपनेको भंगी कहलानेमें आनन्द अनुभव करता हूं। क्योंकि मेरी जानकारीमें भंगीसे नीची कोअी जाति नहीं। बेचारा भंगी ही समाजमें कोढ़ी है जिसे सब दुरदुराते हैं, और फिर भी समाजकी तन्दुरुस्तीके लिअे यानी समाजको जीता रखनेके लिअे दूसरे किसी भी वर्गसे ज्यादा जरूरी वर्ग अिस भंगीका ही है।

जिनकी तरफसे मुझे अूपरकी हकीकत मिली है, अुनके साथ मेरी पूरी हमदर्दी है। पर जिनकी तकदीरमें अुनसे भी ज्यादा नीचे समझे जाना लिखा है अुन्हें वे क्यों अपनेसे नीचा समझें? अैसे लोगोंको भी अपने दायरेमें लेकर जो लाभ दूसरोंको नहीं मिलते, वे

खुद अपने लिअे भी अुन्हें न लेने चाहिये। हिन्दू-धर्मसे अस्वाभाविक छोटे-बड़ेपनका यह धब्बा मिटाना हो, तो अुसकी जड़ अुखाड़नेके लिअे हममें से कितनों ही को खूनका पानी करना पड़ेगा। मेरे खयालसे जो अूंचे होनेका दावा करते हैं, वे अिस दावेसे ही अुसके लिअे नालायक ठहरते हैं। सच्चा और कुदरती अूंचापन तो दावा किये बिना ही मिल जाता है। जो सचमुच बड़ा है, अुसे बिना चाहे ही सब बड़ा कहते हैं। और वह खुद बड़ा होनेसे जो अिनकार करता है, सो दिखावेके लिअे या झूठी नम्रतासे नहीं, बल्कि अिस शुद्ध ज्ञानके कारण करता है कि जो अपनेको नीचा मानता है अुसके भीतर रहनेवाली आत्मा और खुद अुसके भीतरकी आत्मामें कोअी भेद नहीं है। सृष्टिके प्राणिमात्रकी तात्त्विक अेकता और अभेदको जो जानता है, अुसके लिअे अूंच-नीचके भावकी गुंजाअिश ही नहीं। जीवन अेक कर्मक्षेत्र है, वह अधिकार और सत्ताका संचय नहीं। जिस धर्मका पाया अूंच-नीचके भेदकी प्रथा पर है, वह बिलकुल मिट कर ही रहेगा। वर्ण-धर्मके मैं यह मानी नहीं करता। मैं वर्ण-धर्मको मानता हूं, क्योंकि मेरे खयालमें वह अलग-अलग पेशेके लोगोंके कर्तव्य तय करता है।

अिस धर्मके मुताबिक ब्राह्मण वही है जो सब वर्णोंका सेवक है — शूद्रों और अछूतोंका भी सेवक है। चारों वर्णोंकी सेवाके लिअे वह अपना सब-कुछ कुरबान कर देता है, और प्राणिमात्रकी दया पर जीता है। ओहदों, हुकूमत और अधिकारका दावा करनेवाला क्षत्रिय नहीं। क्षत्रिय तो वही है जो समाजकी रक्षा और समाजकी प्रतिष्ठाके लिअे अपनी हस्तीको मिटा देता है। अपने ही लिअे कमानेवाला और अपने ही खातिर धन अिकट्ठा करनेवाला वैश्य नहीं, चोर है। हिन्दू-धर्मके बारेमें मेरा जो खयाल है अुसके अनुसार पांचवां या अछूत नामका कोअी वर्ण है ही नहीं। अछूत कहलानेवाले लोग दूसरे शूद्रोंकी बराबरीके अधिकारवाले समाज-सेवक हैं। मैं मानता हूं कि वर्ण-धर्म समाजकी अूंची-से-अूंची भलाअीके लिअे सोची गयी बढ़ियासे बढ़िया प्रथा है। आज तो हम अुसका ढोंग ही देखते

हैं; और अगर वर्ण-धर्मको कायम रखना हो, तो हिन्दुओंको चाहिये कि वर्ण-धर्मके अिस कलंकका नाश करके वे अुसके पुराने गौरवको फिरसे कायम करें।

नवजीवन, ८–११–'२५

४

मेरा वर्णाश्रम-धर्म

[ब्राह्मण-अब्राह्मणके झगड़ेको ध्यानमें रखकर गांधीजीने कड़लोरमें जो भाषण दिया था, वह श्री महादेवभाअीके साप्ताहिक पत्रसे लेकर नीचे दिया गया है। — प्रकाशक]

मैं आपके अिन झगड़ोंको समझ ही नहीं सकता। पर अुन्हें समझे बिना मैं ज्ञानकी अेक बात आपसे कह दूं। ब्राह्मण तो त्याग और तपको समझनेवाले ही ठहरे। आपको जगहों और ओहदोंके लिअे लड़नेकी क्या जरूरत है? फिर आप अब्राह्मण अितने ज्यादा हैं कि सारे ब्राह्मण आपकी मुट्ठीमें समा जायं। तो नाहक किसलिअे झगड़ा करते हैं? आप वर्णाश्रम-धर्मके खिलाफ लड़ रहे हैं। लेकिन खबरदार, जो चीज हिन्दू-धर्मकी जड़ है, कहीं अुसीको आप खोद न डालें। वर्णाश्रमने आज जो राक्षसी रूप धर लिया है, अुसका सामना आप डटकर कीजिये; अुसमें मैं आपके साथ ही खड़ा हूं। लेकिन अगर आप ब्राह्मणोंकी बुराअियोंका सामना करनेके बदले ब्राह्मणधर्मकी जड़में चोट करेंगे, तो आप हिन्दू नहीं रहेंगे और अेक नया अछूतपन पैदा कर लेंगे। वर्णाश्रम-धर्मके मानी हैं भगवद्गीतामें बताया हुआ वर्णाश्रम-धर्म — समाजकी सेवाके अलग-अलग कार्यों पर बनाये हुअे महानियमोंका धर्म। अिस धर्मका खाने-पीने और शादी-व्याहके साथ कोअी सरोकार नहीं। मेरा वर्णाश्रम-धर्म मुझे पाक और साफ खुराक किसी भी धर्मवालेके और अछूतके भी हाथसे लेनेकी छूट देता है। मेरा वर्णाश्रम-धर्म मुझे अपने आश्रममें अछूत भाअियोंके साथ

अेक पंगतमें बैठकर खानेसे नहीं रोकता। मेरा वर्णाश्रम-धर्म मुझे अेक अछूत लड़कीको अपनी बेटी बनाकर रखनेसे मना नहीं करता। अगर अिस वर्णाश्रम-धर्मको ही आप अुखाड़ना चाहते हैं, तो आप हिन्दू-धर्मको अुखाड़ फेंकेंगे।

[लेकिन जब बात अैसी है, तो फिर ब्राह्मण अपनेको अब्राह्मणोंसे अूंचा क्यों मानते हैं ? क्या आप मंजूर करते हैं कि ब्राह्मण सबसे अच्छे हैं ? अिसका जवाब गांधीजीने अब्राह्मण नेताओंके साथ हुअी बातचीतमें और तंजोरकी सभामें विस्तारसे दिया।]

अगर आपको यह भ्रम हो कि मेरे खयालमें मनुष्य कोअी खास अच्छाअी लेकर पैदा होता है, तो आप अुसे अपने दिलसे निकाल डालिये। मैं तो अद्वैतके बड़े भारी सिद्धांतको माननेवाला हूं, और अद्वैतका मेरा अर्थ अूंच-नीचके फर्कको मंजूर करनेसे अिनकार करता है। हर अिन्सान — चाहे वह हिन्दुस्तानमें पैदा हो या अिंग्लैण्ड-अमेरिकामें — बराबरीके दरजे पर पैदा होता है। मैं अिस सिद्धान्तका कायल हूं। अिसीलिअे हम पर राज्य करनेवाले अपनेको हमसे अूंचा मनवानेकी जो कोशिश करते हैं, अुसके खिलाफ मैं लड़ रहा हूं; दक्षिण अफ्रीकामें अूंच-नीचके भेदके खिलाफ मैं पग-पग पर लड़ा हूं; और अिसी वजहसे मैं अपनेको भंगी, जुलाहा और मजदूर कहलानेमें शान समझता हूं। ब्राह्मण भी जब अपने अूंचेपनका घमण्ड करते हैं, तो मैं अुनसे भी लड़ता हूं। मुझे तो यह नामर्दीकी निशानी लगती है कि आदमी आदमीको अपनेसे नीचा समझे। जो सबसे अच्छा होनेका दावा करते हैं वे अपनी नालायकी साबित करते हैं।

और अिस सबके बावजूद वर्णाश्रम-धर्मके बारेमें मेरी श्रद्धा अटल है। अिसमें जो अटल नियम समाया हुआ है, अुसे कोअी झूठा कर ही नहीं सकता। अुस नियमको मानकर अिन्सान अपने खास गुणोंकी खोज निकालनेके लिअे तैयार होता है। वर्ण-धर्ममें नम्रता है। बराबरीका मतलब यह नहीं कि मनुष्य अलग-अलग गुण लेकर पैदा नहीं होता। जैसे आदमी अपने बापदादेकी शकल लेकर पैदा होता है, वैसे

ही वह खास गुण लेकर भी पैदा होता है। अिस चीजको मंजूर करके हम अपनी मर्यादाको मान लेते हैं, और अिसकी वजहसे परमार्थ साधनेके लिअे सबको अेक-सा मौका मिलता है। यह सच्चा वर्णाश्रम-धर्म है। यह वह वर्णाश्रम-धर्म नहीं, जो आज चल रहा है। बल्कि आप कह सकते हैं कि यह मेरा अपना है। हां, आजकी अुसकी भद्दी शकलका विरोध आप भले ही कीजिये। पर जो मुझे मंजूर है, वह आपको भी मंजूर हो, तो फिर मेरा आपसे कोअी झगड़ा नहीं रहता।

यह नियम सारी दुनियाको मानना ही होगा। जानमें या अनजानमें सभी धर्मोंवाले अिस नियमको मानते हैं। और जब तक आप अिस नियमको अखण्ड रखकर अपनी लड़ाअी लड़ेंगे, तब तक जीत आपकी ही होगी। यानी अब्राह्मण ब्राह्मणको सुधारनेकी कोशिश भले करे, पर अुसका नाश करनेका प्रयत्न न करे। जो ब्राह्मण अपना धर्म भूलकर लालची बनता है, वह ब्राह्मण नहीं रहता है। पर जो ब्राह्मण कंजूस न बनकर अुदार रहता है, जो अपने ज्ञानका फायदा दुनियाको पहुंचाता है, जो अपनी सुगंध फैलाता है और नम्रताकी मूर्त्ति बनकर रहता है, वह खुद अच्छाअीका दावा न करे, तो भी मेरा माथा अुसके आगे अपने-आप झुक जायगा।

नवजीवन, २५–९–'२७

५

अूंचे और नीचे

[तिरुपुरमें लोग गांधीजीके साथ खादी पैदा करनेकी चर्चा करनेके बदले गांधीजीके वर्ण-धर्म-संबंधी विचारों और अछूतपनके विचारोंके बारेमें ज्यादा मशगूल थे। नौजवान यह जानना चाहते थे कि वर्ण-धर्मको कायम रखकर गांधीजी अूंच-नीचके भेद किस तरह मिटाना चाहते हैं। अिस सवाल पर बहस करते-करते अेक दिन शाम पड़ गअी। आखिर गांधीजीने अुन्हें समझाना छोड़कर अुनके दिल पर असर करनेवाली कुछ बातें कहीं। —म० ह० देसाअी]

" मैं आपको यह कैसे समझाअूं कि अूंच-नीचका भेद नहीं रहता? मैं आपसे कहता हूं कि जैसे सीताजी व्यभिचारिणीसे अूंची नहीं थीं, वैसे ब्राह्मण शूद्रसे अूंचे नहीं। क्या आप मानते हैं कि सीताजी अूंची नहीं थीं?"

"ना, नहीं मानते। अैसा भी कहीं हो सकता है?"

"हो सकता है। सीताजीके अपने मनमें अूंचेपनका भाव नहीं था। सीताजीको अपनी पवित्रताका खयाल तक नहीं था, घमण्ड तो होता ही कहांसे? और घमण्डके बिना वे दूसरी स्त्रीको अपनेसे नीची कैसे समझतीं? हिमालय बादलोंके साथ बातें करता है, मगर अुसे अपनी अूंचाअीका सपनेमें भी खयाल नहीं होता। वह तो अपनी गहरी नम्रतामें ही मग्न है। अगर अुसे घमण्ड हो तो अुसका चूरा-चूरा हो जाय। अिसी तरह वर्णका अर्थ अूंच-नीच दिखलानेवाला माप हो जाय, तो वर्ण अेक गलेकी फांसी ही बन जाय। मैक्समूलरने हिन्दू संस्कृतिको समझा था। अुन्होंने लिखा है: 'हिन्दुस्तानने जीवनको कर्त्तव्यरूपमें ही देखा है, जब कि दूसरे देशोंने कर्त्तव्य और भोगको मिला दिया है।' वर्णका मतलब है हरअेकको अपने-अपने बड़ोंकी तरफसे मिला हुआ जीवन-कर्त्तव्य।

"पश्चिममें जब लोग आम जनताकी हालत सुधारनेकी बात करते हैं, तो कहते हैं कि अिन लोगोंके रहन-सहनका माप अूंचा करो। हम अिस तरहकी बात नहीं कर सकते, क्योंकि जहां अपना-अपना माप अपने अन्दर ही मौजूद है वहां बाहरवाला कैसे अुसे अूंचा कर सकता है? हम तो हरअेकके लिअे अपना फर्ज समझने और दिन-दिन प्रभुके नजदीक पहुंचनेका मौका बढ़ा सकते हैं।

"आप आज अिस सारे कर्त्तव्य-वृक्षकी जड़ अुखाड़ने बैठे हैं। मैं मानता हूं कि अिस पेड़के कअी डाल-पत्ते सड़े हुअे हैं। अुन सबको हमें काट डालना चाहिये, पर जड़में कुल्हाड़ी चलाना तो हरगिज जरूरी नहीं। आप जड़में कुल्हाड़ी चलाने बैठे हैं। अिसलिअे आप अनाड़ी माली हैं। आपको अपने बागकी कदर नहीं। जिस पेड़ने आपको पोसा और छाया दी है, अुस पेड़को आप काटना चाहते हैं!

"लेकिन साथ ही यह समझ रखिये कि पेड़को काटनेकी आपकी कोशिश फिजूल है, क्योंकि जो सच्चे ब्राह्मण हैं वे आपकी कुल्हाड़ीकी चोटें सहा करेंगे, और लहू झरते घाव पर घाव सहकर खड़े रहेंगे। यह बात सच है कि आज अैसे सच्चे ब्राह्मण बहुत थोड़े हैं। क्षत्रिय भी कहां हैं? वैश्य और शूद्र भी कहां हैं? आप यह समझते हैं न कि शूद्र होनेमें कुछ विशेषता है? आज तो हम सब गुलाम हैं। आज अेक डायर आकर हमें कंपा देता है। अिसलिअे बेहतर तो यह है कि हम सब गुलामीमें से निकलकर अपने वर्ण-धर्मको समझने लगें। बहुतोंको वैश्य बनना पड़ेगा, क्योंकि आज वैश्यके पैर तले सब कुचले जा रहे हैं।

"जब मैं यह कहता हूं कि हम ब्राह्मण बनें, तो अिसका यह मतलब नहीं कि जैसे हैं अुससे अूंचे बनें। बल्कि यह है कि हम ब्राह्मणके अूंचे सेवा-धर्मके लायक बनें। आज तो हम अितने नीचे गिर गये हैं कि यह ब्राह्मण है और वह शूद्र है, यह अूंचा है और वह नीचा है, अिस भाषामें ही हमारी गाड़ी फंस गअी है।"

नवजीवन, ६–११–'२७

६

वर्णाश्रम-धर्म*

१

[गांधीजीके दक्षिणके दौरेमें बहुत जगह अब्राह्मण मित्र गांधीजीसे मुलाकात करने आते और ब्राह्मण-अब्राह्मणके सवालके अलग-अलग पहलुओं पर चर्चा करते थे। बहुत बार वही सवाल कअी जगह पूछे जाते, मगर जवाबका आधार हर जगह पूछनेवालोंकी पात्रता पर रहता था। अिन सब जवाबोंको अिकट्ठा करके मैंने सवाल-जवाबके अेक सिलसिलेमें बांध दिया है। अिनमें तंजोर, चेट्टीनाड, विरुद्धनगर और तिनेवेलीकी तमाम बातचीतें आ जाती हैं। मदुराकी बातचीतके वक्त मैं मौजूद न था, मगर मैं मानता हूं कि अिन बातचीतोंके संग्रहमें वहां जिनकी चर्चा हुअी वे विषय भी आ जाते हैं। कडलोर, तंजोर और कोअिम्बतूरके सार्वजनिक भाषणोंमें गांधीजीने जो खयाल जाहिर किये अुन्हें मैं अिस पत्रमें दे चुका हूं, अिसलिअे यहां नहीं दोहराता। अिसी तरह जिन भाषणोंका सार मैं दे चुका हूं — जैसे तिरुपुरमें हुअी अूंच-नीचपन संबंधी बातचीत — अुन्हें भी मैंने छोड़ दिया है। **— म० ह० देसाअी**]

सवाल — वर्ण-धर्म पर आप जो जोर देते हैं अुसे हम समझ नहीं सकते। क्या आप आजकलकी जात-पांतको ठीक समझते हैं? वर्णकी आपकी व्याख्या क्या है?

जवाब — वर्ण यानी अिन्सानके धंधेके चुनावका पहलेसे किया हुआ फैसला। आदमी अपने गुजारेके लिअे बापदादोंका ही पेशा करे, अिसका नाम वर्ण-धर्म। हर लड़का सहज ही बापके 'वर्ण' (रंग) का अनुसरण करता है, या बापका धंधा करना पसन्द करता है। अिसलिअे वर्ण अेक तरहसे खानदानी विरासतका नियम है। वर्ण हिन्दुओं पर

---

* 'ब्राह्मण और अब्राह्मण' शीर्षकसे छपी प्रश्नोत्तरी।

किसीकी लादी हुअी चीज नहीं, बल्कि जिन बुजुर्गोंके सिर पर हिन्दू-जातिका भला करनेकी जिम्मेदारी थी अुन्होंने हिन्दुओंके लिअे यह कायदा खोज निकाला था। यह नियम मनुष्यकी कृति नहीं, बल्कि कुदरतका अटल कानून है। न्यूटनके गुरुत्वाकर्षणकी तरह जो शक्ति सदा रहती है और सृष्टिमें चलती है, अुसीको अिन्सानकी भाषामें वर्ण कह दिया है। जैसे न्यूटनकी खोजसे पहले भी गुरुत्वाकर्षणका नियम मौजूद था, अुसी तरह वर्ण-धर्म भी था। अिस कुदरती कानूनको ढूंढ़ निकालना हिन्दुओंके भाग्यमें था। पश्चिमके लोगोंने कुदरतके कुछ कानूनोंकी खोज और अिस्तेमाल करके अपनी आर्थिक संपत्ति खूब बढ़ा ली है। अुसी तरह हिन्दू अिस अचूक सामाजिक शक्तिकी खोज करके आध्यात्मिक क्षेत्रमें जो कमाल हासिल कर सके हैं वह दुनियाकी किसी दूसरी जातिको नहीं मिला है।

वर्णका जात-पांतसे कोअी संबंध नहीं। जात-पांत अछूतपनकी तरह हिन्दू-धर्म पर अुगा हुआ 'फालतू अंग' है। आज जिन 'फालतू अंगों' पर जोर दिया जाता है, वे कभी हिन्दू-धर्ममें नहीं थे। पर क्या अैसे 'फालतू अंग' आप अीसाअी धर्म या अिस्लाममें भी नहीं देखते?

अिनका सामना आप भरसक कीजिये। वर्णका बनावटी वेश धरकर फिरनेवाले जात-पांतरूपी राक्षसका आप जरूर नाश कीजिये। वर्णकी अिस बिगड़ी हुअी शकलने ही हिन्दू-धर्मको और हिन्दुस्तानको नीचे गिराया है। हमारी आर्थिक और आध्यात्मिक गिरावटका बड़ा सबब यही है कि हम वर्ण-धर्मका अमल करनेमें चूक गये। बेकारी और गरीबीका भी यह अेक कारण है। और अछूतपनके और अुसी तरह बहुतेरे हिन्दुओंके धर्म छोड़नेके लिअे भी यही जिम्मेदार है।

लेकिन वर्ण-धर्मके मौजूदा राक्षसी स्वरूपका और राक्षसी रीति-रिवाजोंका विरोध करते हुअे हमें असली धर्मका विरोध नहीं करना चाहिये।

स० — वर्ण कितने हैं?

ज० — चार, हालांकि वर्ण-धर्मके स्वभावमें गिनतीकी अैसी कड़ाअी नहीं है। लगातार प्रयोग और खोज करनेके बाद अृषियोंको ये चतुर्विध भेद या रोजी कमानेके चार तरीके मिले हैं।

स० — तो क्या अिसका यह मतलब नहीं कि जितने धंधे अुतने वर्ण हैं?

ज० — यह आवश्यक नहीं। समाजके तमाम धंधोंको पढ़ने-पढ़ाने, रक्षा करने, रुपया कमाने और सेवा करनेके चार खास हिस्सोंमें आसानीसे बांटा जा सकता है। दुनियाके व्यवहारका विचार करें, तो सबसे बड़ा धंधा माल पैदा करनेका है, जैसे सब आश्रमोंमें सबसे बड़ा गृहस्थ-आश्रम है। वैश्य सब वर्णोंका सहारा है। माल-मिल्कियत न हो तो रक्षककी क्या जरूरत? तीसरे वर्णके लिअे ही पहले, दूसरे और चौथे वर्ण जरूरी हैं। पहला वर्ण हमेशा बहुत ही छोटा होगा, क्योंकि अुसके लिअे कठिन संयम जरूरी है। सुव्यवस्थित समाजमें दूसरा वर्ण भी छोटा ही होना चाहिये। यही बात चौथे वर्णकी भी समझिये।

स० — जो आदमी अपना जन्मप्राप्त धंधा न करे अुसे किस वर्णमें गिना जाय?

ज० — हिन्दुओंकी मान्यताके अनुसार तो अुसका वर्ण जन्मसे ही गिना जायगा। लेकिन वर्णके मुताबिक न जीकर वह अपना नुकसान करता है और गिरी हुअी हालतमें पहुंचता है — पतित बनता है।

स० — मनुष्य शूद्र होकर ब्राह्मणका काम करे तो क्या वह पतित हो जाता है?

ज० — शूद्रको ज्ञान पानेका अुतना ही हक है जितना ब्राह्मणको; लेकिन वह अपना गुजारा लोगोंको लिखा-पढ़ाकर करनेकी कोशिश करे, तो वह जरूर वर्ण-धर्मसे गिर जायगा। पुराने जमानेमें अलग-अलग धंधोंकी अपने-आप बनी हुअी पंचायतें थीं, और अलग-अलग पेशेवाले हरअेक आदमीको पोसनेका पीढ़ी-दर-पीढ़ीसे चला आया रिवाज था। सौ बरस पहले बढ़अीका लड़का वकील बननेका लालच नहीं करता

था। आज करता है, क्योंकि अिस धंधेमें अुसे धन चुरानेका सबसे आसान रास्ता दिखाअी देता है। वकील मानता है कि अुसे अपना दिमाग खर्च करनेके बदले १५,००० रुपयेकी फीस लेनी चाहिये, और हकीम साहब जैसे डॉक्टर-वैद्य समझते हैं कि अुन्हें अपनी डॉक्टरी सलाहके लिअे १,००० रुपये रोज लेने चाहिये।

स० — तो क्या मनुष्यको अपनी पसन्दका धंधा करनेकी छूट नहीं है?

ज० — पर बापदादाका धंधा ही अुसकी पसंदका अेकमात्र धंधा होना चाहिये। यह पेशा पसन्द करनेमें कोअी बुराअी नहीं है। अुलटे अिसमें कुलीनता है। आज तो हम सतरंगे आदमी देखते हैं। अिसीसे समाजमें हिंसा फैली हुअी है और समाज तितर-बितर हो गया है। छिछली मिसालोंसे हमें अपने मनको भटकने न देना चाहिये। बापका धंधा करनेवाले बढ़अीके लड़के हजारों होंगे, जब कि वकीलका धंधा करनेवाले बढ़अीके लड़के शायद सौ भी न हों। पुराने जमानेमें लोगोंको दूसरेके धंधे पर छापा मारने और धन बटोरनेका लालच न था। अुदाहरणके लिअे सिसेरो*के समयमें वकीलका धंधा प्रतिष्ठित माना जाता था। और कोअी बड़े दिमागवाला बढ़अी रुपयेके लिअे नहीं, बल्कि सेवाके खातिर वकील बने तो वह बिलकुल ठीक ही कहा जाता था। बादमें अिस धंधेमें नाम और धनकी लालसा घुस गअी। वैद्य समाजकी सेवा करते और समाज अुन्हें जो कुछ देता अुसी पर वे संतोष करते थे। पर अब तो वे व्यापारी बन गये हैं और समाजके लिअे भी खतरनाक हो बैठे हैं। वैद्य और वकीलके पेशोंका हेतु जब सिर्फ दूसरोंकी भलाअी करना था, तब अिन धंधोंका परोपकारी कहलाना अुचित था।

स० — यह सब आदर्श स्थितिकी बात हुअी। आज तो सब रुपयेके धंधेके पीछे पड़े हैं। अैसी हालतमें आप क्या करनेकी सलाह देते हैं?

---

* मार्कस टूलियस सिसेरो (अी० पू० १०६–४३) रोमका मशहूर वक्ता, फिलॉसफर, राजनीतिज्ञ और कानून-पंडित था।

ज० — यह आपने जरा बड़ी बात कह दी। आजकल स्कूल-कॉलेजमें पढ़नेवाले लड़कोंकी गिनती कीजिये और यह ढूंढ़ निकालिये कि अिनमें से कितने फी सदी विद्वत्ताका पेशा करते हैं। दिन-दहाड़े लूटना सबके लिअे मुमकिन नहीं है। आजकलकी हलचल तो दिन-दहाड़े लूटनेकी दीखती है। कितने लोग वकील और सरकारी नौकर बन सकते हैं? धन कमानेमें लगनेका अधिकार तो वैश्योंका है। तिस पर भी जब अुनका पेशा दिन-दहाड़ेकी लूट बन जाता है, तब वह तिरस्कारका पात्र हो जाता है। दुनियामें लाखों लखपती हो ही नहीं सकते।

स० — तामिलनाडमें तो तमाम अब्राह्मण अैसा धंधा करना चाहते हैं, जो अुन्हें अपने बापदादोंसे न मिला हो।

ज० — २ करोड़ २० लाख तामिलनाडके रहनेवालोंकी तरफसे बोलनेका आपका अधिकार मैं नहीं मानता। मैं आपको अेक सूत्र देता हूं — जिस जगह दूसरे सब न पहुंच सकें, अुस जगह खुद पहुंचनेका लालच हमें न रखना चाहिये। अिस सूत्र पर अमल करना हो, तो वह मेरी व्याख्यावाले वर्ण-धर्मसे ही हो सकता है।

स० — आप यह कहते रहे हैं कि वर्ण-धर्म हमारी सांसारिक वासनाओं पर अंकुश रखता है। यह कैसे?

ज० — मैं अपने बापका धंधा करूं, तो अुसे सीखनेके लिअे मुझे स्कूल भी न जाना पड़े। यानी मेरी मानसिक शक्ति आध्यात्मिक अभ्यासके लिअे और खोजके लिअे खुली रहे, क्योंकि मुझे रुपयोंकी या गुजारेकी तो चिंता ही न रहेगी। सुख-सुविधा और सच्ची आध्यात्मिक तलाशके लिअे वर्ण सबसे बढ़िया बीमा है। जब मैं अपनी शक्तियोंको दूसरे कामोंमें लगाता हूं, तो मैं दुनियाके सुखके — मृग-जलके — खातिर अपनी आत्माको पानेकी शक्तिको या अपनी आत्माको बेच डालता हूं।

स० — आप आध्यात्मिक कामोंके लिअे शक्तिको खुला रखनेकी बात करते हैं। आज जो अपने बापदादोंका धंधा करते हैं अुनमें किसी तरहकी आध्यात्मिक संस्कारिता दिखाअी नहीं देती — अुनका वर्ण ही अुन्हें अिसके लिअे नालायक बना देता है।

ज० — हम वर्णके विकृत विचार मनमें रखकर बातें करते हैं। जब वर्ण-धर्म सचमुच पाला जाता था, तब आध्यात्मिक शिक्षाके लिअे काफी वक्त रहता था। आज भी आप दूरके गांवोंमें जाअिये और देखिये कि शहरवालोंसे गांवके लोगोंमें कितनी ज्यादा आध्यात्मिक संस्कारिता है। शहरके लोग तो संयमको जानते ही नहीं।

लेकिन आपने अिस जमानेकी बुराअी ठीक-ठीक बताअी है। दूसरे जिस हालतको न पा सकें, अुसे पानेकी कोशिश हम न करें। अगर गीता पढ़नेकी अिच्छा रखनेवाला हरअेक आदमी गीता न पढ़ सके तो मैं गीता भी न पढ़ूं। यही वजह है कि धन कमानेके लिअे अंग्रेजी पढ़नेके विरोधमें मेरी अन्तरात्मा अुबल पड़ती है। हमें अपनी जिंदगी फिरसे अिस तरह बनानी है कि जिससे आज जो फुरसत हममें से मुट्ठी-भर लोगोंको है वह लाखोंको मिल सके। यह हम वर्ण-धर्मको पाले बिना नहीं कर सकते।

नवजीवन, ११–१२–'२७

२

स० — हम आपसे बार-बार अेक ही सवाल पूछें तो आप हमें माफ कीजियेगा। हम अिसे ठीक-ठीक समझ लेना चाहते हैं। अलग-अलग वक्तमें अलग-अलग धंधा करनेवाले आदमीका कौनसा वर्ण माना जाय?

ज० — जब तक वह बापका धंधा करके गुजर चलाता है, तब तक अुसके वर्णमें कोअी फर्क नहीं पड़ता। सेवाभावसे तो वह चाहे जो धंधा करनेके लिअे आजाद है। लेकिन जो आदमी धन कमानेके लिअे बार-बार धंधा बदलता है, वह अधोगति पाता है और वर्ण-धर्मसे गिर जाता है।

स० — किसी शूद्रमें ब्राह्मणके सब गुण होते हुअे भी क्या अुसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता?

ज० — वह अिस जन्ममें ब्राह्मण नहीं कहलायेगा। और अुसके लिअे यह अच्छा है कि जिस वर्णमें वह पैदा नहीं हुआ अुसे वह न अपनाये। यह सच्ची नम्रताकी निशानी है।

स० — क्या आप मानते हैं कि वर्णके गुण विरासतमें ही मिलते हैं और अपनी कोशिशसे हासिल नहीं किये जा सकते?

ज० — किये जा सकते हैं। विरासतमें मिले हुअे गुण मजबूत किये जा सकते हैं, और नये बढ़ाये जा सकते हैं। मगर हमें धन कमानेके लिअे नये रास्ते खोजनेकी जरूरत नहीं, खोजना बेजा है। हमारे बापदादोंकी तरफसे जो पेशे हमें विरासतमें मिले हों, वे जब तक शुद्ध हों तब तक हमें अुन्हींमें संतोष मानना चाहिये।

स० — क्या आप नहीं देखते कि किसी आदमीमें अुसके खानदानके गुणोंसे अलग किस्मके गुण होते हैं?

ज० — यह मुश्किल सवाल है। अिन्सानकी तमाम पिछली बातोंका हमें ज्ञान नहीं होता। लेकिन मैंने आपको जो वर्ण-धर्म समझाया है अुसे समझनेके लिअे आपको और मुझे अिस सवालकी गहराअीमें जानेकी जरूरत नहीं। मेरे पिता व्यापारी हों और मुझमें लड़वैयेके गुण दीखें तो मैं सिपाहीके तौर पर देशकी सेवा मुफ्त भले ही करूं, पर मुझे अपना गुजर तो व्यापारसे ही करके संतोष मानना चाहिये।

स० — आज जो जाति-भेद दिखाअी देते हैं, वे अेक वर्णके दूसरे वर्णके साथ रोटी-बेटी-व्यवहार-संबंधी बंधनोंमें ही खत्म हो जाते हैं। क्या वर्णकी रक्षाके लिअे अिन बंधनोंको कायम रखना जरूरी है?

ज० — नहीं, जरा भी नहीं। वर्णकी शुद्धसे शुद्ध स्थितिमें किसी भी तरहके बंधन कायम नहीं रह सकते।

स० — ये बंधन दूर किये जा सकते हैं?

ज० — किये जा सकते हैं। दूसरे वर्णोंमें ब्याहनेसे भी वर्ण तो कायम रहता ही है।

स० — तो अिसमें स्त्रीका वर्ण कौनसा माना जायगा?

ज० — जो पतिका वर्ण वही पत्नीका भी।

स० — आपने वर्ण-धर्मका जो सिद्धांत बताया वह हमारे शास्त्रोंमें मिलता है या आपका अपना है?

ज० — यह मेरा खुदका नहीं है। मुझे यह भगवद्गीतासे मिला है।

स० — मनुस्मृतिमें यह सिद्धान्त जिस तरह बताया गया है क्या आप असे मानते हैं?

ज० — सिद्धान्त तो असमें है ही। लेकिन व्यवहारमें असके जो अपयोग बताये गये हैं, वे पूरी तरह मेरे गले नहीं अतरते। अस ग्रंथके कुछ हिस्से बहुत आपत्तिजनक हैं। मेरा खयाल है कि वे बादमें जोड़े गये हैं।

स० — क्या आपको नहीं लगता कि मनुस्मृतिमें बहुतसी अन्याय-पूर्ण बातें हैं?

ज० — हां, स्त्रियों और नीची कहलानेवाली 'जातियों' के साथ असमें बहुत अन्याय है। शास्त्रके नाम पर चलनेवाली बहुतसी बातें शास्त्र नहीं होतीं। असलिअे शास्त्रकी पुस्तकें पढ़ते वक्त बहुत सावधानी रखनी चाहिये।

स० — मगर आप तो भगवद्गीताके अनुसार चलते हैं। असमें कहा है कि वर्ण गुण और कर्मसे तय होता है। तब आप यह जन्मकी बात कहांसे लाये?

ज० — मैं भगवद्गीताके अनुसार चलता हूं, क्योंकि यही धर्मकी अेक अैसी पुस्तक है जिसमें मुझे दोष निकालने जैसा कुछ नहीं मिला। यह सिर्फ सिद्धान्त पेश करती है, और अस पर अमल करनेका तरीका ढूंढ़ निकालनेका काम हमें सौंप देती है। गीता यह जरूर कहती है कि वर्ण गुण और कर्मके अनुसार होता है, मगर गुण और कर्म जन्मसे विरासतमें मिलते हैं। भगवान कृष्णने कहा है कि चारों वर्ण मैंने पैदा किये हैं — चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्। असमें से मैंने 'जन्मतः' का अर्थ निकाला है। वर्ण-धर्म जन्मसे न हो तो असके कोअी मानी नहीं।

स० — पर वर्णमें अूंचपन तो बिलकुल ही नहीं आता न?

ज० — नहीं, जरा भी नहीं। गो कि मैं यह जरूर कहूंगा कि ब्राह्मण-वर्ण दूसरे वर्णोंकी आखिरी हद है, जैसे सिर शरीरकी आखिरी हद है। असका अर्थ सेवाकी बढ़ी-चढ़ी शक्ति है, बढ़ा-चढ़ा दरजा

नहीं। बढ़ा-चढ़ा दरजा अख्तियार करते ही वह पैरों तले कुचलने लायक बन जाता है।

स० — आपने 'कुरळ' का नाम सुना होगा। अिस तामिल ग्रंथके लेखक कहते हैं कि कोअी भी वर्ण जन्मसे नहीं होता। वे कहते हैं कि पैदा होते वक्त तो सारे जीव समान दरजेके होते हैं।

ज० — अुन्होंने जो कहा है वह मौजूदा ज्यादतियोंके जवाबके तौर पर कहा है। किसी वर्णने अूंचपनका दावा किया होगा तो अुसके खिलाफ अुन्हें अपनी आवाज अुठानी पड़ी होगी। मगर अिससे जन्मतः वर्ण पर कुठाराघात नहीं होता। यह तो असमानता पर कुल्हाड़ी चलानेकी अेक सुधारककी कोशिश है।

स० — क्या आप यह महसूस नहीं करते कि आजकलकी रूढ़ियां या पुराने रिवाज अितने सड़े हुअे हैं कि अुन्हें जड़से अुखाड़ फेंकना और फिर अेक-दोसे शुरू करना ही सबसे अच्छा रास्ता है?

ज० — बशर्ते कि हम विधाता हों। कलमके अेक अिशारेसे हम हिन्दू-स्वभावको बदल नहीं सकते। अिस नियमका अमल करनेकी रीति हम ढूंढ़ सकते हैं, अिसे मिटानेकी नहीं।

स० — शास्त्र बनानेवालोंने नयी स्मृतियां रचीं, तो आप क्यों नहीं रचते?

ज० — हां, अगर मैं नयी दुनिया बना सकूं तो! तब तो मेरी हालत विश्वामित्रसे भी बुरी हो जाय। और, विश्वामित्र तो मुझसे कहीं बड़े थे।

स० — जब तक आप वर्णको नहीं मिटाते तब तक अछूतपन नहीं मिटेगा।

ज० — मैं यह नहीं मानता। फिर भी छुआछूतको मिटानेमें वर्णाश्रम मिट जाय, तो मैं अेक आंसू भी नहीं बहाअूंगा। मगर मेरी व्याख्याके वर्णका छुआछूतके साथ क्या सम्बन्ध है?

स० — मगर सुधारके विरोधी लोग अपनी हिमायतमें आपका सबूत जो पेश करते हैं?

ज० — यह हालत तो हर सुधारकके तकदीरमें लिखी है। स्वार्थी पक्ष अुसकी बातोंका अनुचित अुपयोग करेंगे ही। मगर आप जानते हैं कि अुनमें से कुछ यह चाहते हैं कि मैं हिन्दू-धर्म छोड़ दूं? दूसरे कुछ अैसे हैं कि अुनका बस चले तो वे मुझे हिन्दू-धर्मसे निकाल दें। मैं वर्ण-धर्मका बचाव करनेके लिअे कहीं गया नहीं, पर छुआछूत मिटानेके लिअे तो मैं वायकम तक गया था। खादी-प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम अेकता और छुआछूतका नाश, स्वराज्यके अिन तीन स्तंभोंके बारेमें कांग्रेसने जो प्रस्ताव पास किया था, अुसे मैंने बनाया था। लेकिन वर्णाश्रम-धर्मकी संस्थापनाको मैंने कभी स्वराज्यका चौथा स्तंभ नहीं कहा। अिसलिअे आप मुझ पर यह अिलजाम नहीं लगा सकते कि मैंने वर्णाश्रम-धर्म पर गलत जोर दिया।

स० — क्या आप जानते हैं कि आपके बहुतसे अनुयायी आपके मकसदको बिगड़े हुअे रूपमें फैलाते हैं?

ज० — जानता क्यों नहीं? मैं जानता हूं कि मेरे बहुतसे अनुयायी सिर्फ नामके हैं।

स० — बौद्ध धर्मको हिन्दुस्तानसे निकाल बाहर किया गया, क्योंकि अुस धर्ममें ब्राह्मणोंका बहुत जोर था। अुसी तरह अगर हिन्दू-धर्मसे ब्राह्मणोंका स्वार्थ न सधा, तो वे हिन्दू-धर्मको भी निकाल बाहर करेंगे।

ज० — तो हिम्मत करके देखें! पर मुझे तो यकीन है कि बौद्ध धर्म हिन्दुस्तानसे गया नहीं है। बुद्धके जीवनके रहस्यको सबसे ज्यादा अपनानेवाला देश तो हिन्दुस्तान ही है। बुद्धके जीवन-रहस्यको बौद्ध धर्मसे अलग चीज समझना चाहिये, जैसे अीशु ख्रिस्तका जीवन-रहस्य अीसाअी धर्मसे अलग चीज है। अुन्होंने बुद्धके खास अुपदेशको अपनी जिन्दगीमें अुतार लिया था, अिसीलिअे वे बौद्ध धर्मको देश-निकाला दे सके थे।

स० — ब्राह्मणोंके जिस वर्गने बौद्ध धर्मका सबसे अच्छा हिस्सा अपना लिया था, अुसी वर्गने अछूतोंको मन्दिरोंमें जानेसे रोककर

और अुन पर बेरहमी भरी रुकावटें डालकर भद्दे-से-भद्दे अपराध, अमृतसरके जुल्मोंसे भी भद्दे अपराध, किये हैं।

ज० — आपका कहना कुछ हद तक सच है। लेकिन आप यह मानकर गलती करते हैं कि ब्राह्मण ही अिसके दोषी हैं। अिसके लिअे सारा हिन्दू-धर्म जिम्मेवार है। जब वर्ण-धर्मका रूप बिगड़ा तो अुसमें से अछूतपन पैदा हुआ। यह कोअी जान-बूझकर की हुअी दुष्टता नहीं थी, मगर अिसका नतीजा बहुत ही दुःखदायी निकला है।

स० — मगर जब तक आप 'वर्णाश्रम-धर्म' शब्दका अिस्तेमाल करते रहेंगे, तब तक अुसके साथ आजके बुरे खयाल जुड़े ही रहेंगे।

ज० — तो अिसका सार यह निकला कि बुरे खयाल निकाल डालो और शुद्ध वर्ण-धर्मको फिर जिन्दा करो।

स० — अभी तो चारों तरफ गड़बड़ी है। अुसमें से हम किस तरह निकलें?

ज० — मुझे यही कहना है कि बुनियादको न अुखाड़ो, जो है अुसे शुद्ध करनेकी कोशिश करो। अुसके बजाय आप तो अेक अैसा नया धर्म फैलानेकी खटपटमें पड़े हैं, जिसे स्वीकार करनेको कोअी तैयार नहीं। ब्राह्मण-धर्म ही तो हिन्दू-धर्म है। यानी हिन्दू-धर्मके लिअे हमारे पास अेक ही शब्द था — 'ब्राह्मण-धर्म', यानी ब्रह्म-विद्या। अिसे मिटानेकी कोशिश करके आप हिन्दू-धर्मको मिटानेकी कोशिश करते हैं। ब्राह्मण जब आपके हकों पर हमला करें, तो आप अुनसे पग-पग पर लड़ लेना और अुन्हें सुधारनेकी कोशिश करना। मगर हरअेक ब्राह्मणको भद्दी गालियां देनेसे कोअी फायदा नहीं। ब्राह्मण ब्राह्मणमें भी फर्क होता है। अेक ब्राह्मण कट्टर सुधारक होता है, दूसरा सुधारका विरोधी होता है। आपको सुधारक वर्गके ब्राह्मणोंमें से सबसे अच्छे आदमियोंको अपनी तरफ लेना चाहिये और अुनकी मददसे अपने कार्य-क्रमके रचनात्मक हिस्सेको पूरा करना चाहिये। अिससे ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनोंको मुक्ति मिलेगी।

आप सुधारके विरोधियोंसे जरूर लड़िये और अुनसे कहिये — 'अगर आप लोग धन और ठाट-बाटके पीछे पड़ेंगे, विद्वान नहीं बनेंगे

और हमें सच्चा धर्म नहीं सिखायेंगे, तो हम आपको ब्राह्मण नहीं कहेंगे।' तब ब्राह्मण आपका जरा भी विरोध नहीं कर सकेंगे। सुधार करानेके लिअे आप जोरदार हलचल कीजिये, और जहां किसी भी अब्राह्मणके लिअे कोअी रुकावट हो अुन स्कूलों और मन्दिरोंको छोड़ दीजिये। अिस बातका आग्रह रखिये कि मन्दिरोंके पुजारी नेकचलन, विद्वान और धनके लालचसे दूर हों। अगर पुराने मन्दिर अछूतोंको घुसने देनेसे अिनकार करें तो आप नये मन्दिर बनाअिये।

अब सवाल रहा दूसरे वर्णोंके साथ खानेका। अिसके लिअे मैं किसीसे लड़ने नहीं जाअूंगा। लेकिन जहां खानेके मौके पर अैसा कोअी भेद माना जाय, वहां खानेमें शरीक होनेसे जरूर बचूंगा।

फिर मैं अछूतोंके साथ भाअीचारा बढ़ाअूंगा, अुनके साथ सगे भाअी जैसा बरताव करूंगा, तमाम छोटी-छोटी जातियों और अुप-जातियोंको तोड़ डालूंगा, और जब मैं अपने लड़केका ब्याह करूंगा तो कोशिश करके दूसरी अुपजातियोंमें से लड़की ढूंढ़ लूंगा। आज हम भद्दी रूढ़ियोंसे अितने जकड़े हुअे हैं कि आप न तो यहांसे गुजरातमें जा बसनेको अपनी लड़की देंगे और न गुजरातकी लड़की तामिलनाडमें बसनेको लेंगे।

अिसके बाद मैं अछूतोंको धार्मिक शिक्षाके तौर पर हिन्दू-धर्मके और नीति-धर्मके असूलोंकी मामूली जानकारी कराअूंगा। आज तो वे बेचारे महज जानवरोंकी-सी जिन्दगी बिता रहे हैं। मैं अुन्हें निषिद्ध खुराक छोड़ने और पवित्र व साफ जीवन बितानेको समझाअूंगा। आप अिन बातोंको आसानीसे बढ़ा सकेंगे और अिनमें से अेक बड़ा रचनात्मक कार्यक्रम पैदा कर सकेंगे।

स० — हम देखते हैं कि आपको हिन्दू-धर्म पर बड़ी भारी श्रद्धा है। क्या आप हमें समझायेंगे कि हिन्दू-धर्मने हमारे लिअे क्या किया है, हिन्दू-धर्मका हम पर क्या कर्ज है? क्या अुसने हमें बेहूदा वहमों और रूढ़ियोंकी विरासत नहीं दी?

ज० — मैं मानता था कि यह बात तो समझी जा चुकी होगी। वर्णाश्रम-धर्म ही दुनियाके कदमोंमें रखी हुअी हिन्दू-धर्मकी अेक बेमिसाल

भेंट है। हिन्दू-धर्मने हमें मायासे यानी मुसीबतसे बचा लिया है। अगर हिन्दू-धर्म मुझे बचाने न दौड़ा होता, तो मेरे लिअे खुदकुशीका ही अेक रास्ता बचा था। मैं हिन्दू रहा हूं, क्योंकि हिन्दू-धर्म अेक अैसी चीज है जो अपनी खुशबू सब जगह फैलाकर दुनियाको अिन्सानके बसने लायक बनाता है। हिन्दू-धर्मसे ही बौद्ध धर्मका जन्म हुआ है। आज हम जो देखते हैं वह हिन्दू-धर्मका शुद्ध स्वरूप नहीं बल्कि अकसर अुसका बिगड़ा हुआ रूप होता है। नहीं तो मुझे अुसकी तरफदारीमें बोलनेकी जरूरत न रहती, वह खुद ही अपनी वकालत कर लेता — जैसे अगर मैं पूरी तरह शुद्ध होअूं, तो मुझे आपके आगे बोलनेकी जरूरत न रहे। अीश्वर अपनी जबानसे नहीं बोलता। और मनुष्य जितना अीश्वरके नजदीक आता है, अुतना ही वह अीश्वर-वत् बनता है। हिन्दू-धर्म मुझे सिखाता है कि मेरा शरीर अन्दर रहनेवाली आत्माकी शक्तिको रोकनेवाला बन्धन है।

जैसे पश्चिमके लोगोंने दुनियावी चीजोंके बारेमें अद्भुत खोजें की हैं, वैसे ही हिन्दू-धर्मने धर्मके, मनोवृत्तिके और आत्माके क्षेत्रमें अिससे भी ज्यादा अद्भुत खोजें की हैं। लेकिन अिन भव्य और सूक्ष्म खोजोंको देखनेवाली आंखें हमारे पास नहीं हैं। पश्चिमी विज्ञानने जो आर्थिक तरक्की की है, अुससे हमारी आंखें चौंधिया जाती हैं। मुझे अुस तरक्कीका मोह नहीं है। सही नजरसे देखने पर यही लगता है कि मानो सयानेपनके भण्डार अीश्वरने ही हिन्दुस्तानको अिस तरहकी तरक्कीसे बचा लिया है, जिससे जड़वादके हमलेको सहनेका अीश्वरका दिया हुआ काम यह देश पूरा कर सके। हिन्दू-धर्ममें अैसा कुछ सत्त्व है जिसने अुसे आज तक जिन्दा रखा है। वह बेबिलोन, सीरिया, अीरान और मिस्रकी सभ्यताओंके पतनका साक्षी है। दुनियामें चारों तरफ नजर डालकर देखिये। रोम कहां है? ग्रीस कहां है? गिबनका अिटली — या रोम कहिये, क्योंकि रोम ही अिटली था — आज आपको कहीं भी ढूंढ़े मिल सकता है? ग्रीसमें जाअिये। ग्रीसकी सारी दुनियामें मशहूर संस्कृति कहां है? फिर हिन्दुस्तानकी तरफ आंखें मोड़िये। यहांके पुरानेसे पुराने ग्रंथोंकी कोअी जांच

कर ले और फिर आसपास नजर डाले, तो अुसे यह बरबस कहना ही होगा — 'हां, यहां पुराना हिन्दुस्तान अभी जिन्दा दिखाअी देता है।' सच है कि किसी-किसी जगह घूरे बन गये हैं, लेकिन अुन घूरोंके नीचे निहायत कीमती रत्न दबे पड़े हैं। और हिन्दू-धर्म समयके अितने फेरबदलके सामने जो टिका हुआ है, अुसका सबब यह है कि अुसने आर्थिक प्रगतिके आदर्शका नहीं, बल्कि पारमार्थिक प्रगतिके आदर्शका सेवन किया है।

अुसने दुनियाको जो कअी भेंटें दी हैं, अुनमें मूक जीवसृष्टिके साथ मनुष्यकी अेकताका खयाल अेक अनोखी चीज है। मेरी समझसे गायकी पूजा अेक भव्य विचार है, और अुसे व्यापक किया जा सकता है। धर्म-परिवर्तनके आजकलके पागलपनसे हिन्दू-धर्म जो बचा रहा है, वह भी मेरे खयालसे कीमती चीज है। हिन्दू-धर्मको प्रचारकी जरूरत नहीं। वह कहता है — 'शुद्ध जीवन विताओ।' मेरा और आपका फर्ज सिर्फ पाक जिन्दगी गुजारना है। अुसका असर जमाने पर रह जायगा। फिर यह सोचिये कि हिन्दू-धर्मने रामानुज, चैतन्य, रामकृष्ण जैसे कितने ही महापुरुष दुनियाको दिये हैं। हिन्दू-धर्म पर आजके समयमें जिन पुरुषोंने अपनी छाप डाली है, अुनके तो नाम भी मैं यहां नहीं देता। हिन्दू-धर्म मरता हुआ या मरा हुआ धर्म नहीं है।

फिर चार आश्रमोंकी भेंटका विचार कीजिये। यह भी अेक अद्वितीय भेंट है। अिसकी जोड़ सारी दुनियामें और कहीं नहीं मिल सकती। कैथोलिक धर्ममें ब्रह्मचारियोंसे मिलते-जुलते कुंवारोंका वर्ग जरूर है, पर वह अुस धर्मकी संस्था नहीं है। हिन्दुस्तानमें तो हर लड़केको अिस प्रथम आश्रममें से गुजरना पड़ता था। यह कितनी भव्य कल्पना थी! आज हमारी आखें मैली हैं, विचार अुनसे भी ज्यादा मैले हैं, और शरीर सबसे ज्यादा मैला है, क्योंकि हम हिन्दू-धर्मसे अिनकार कर रहे हैं।

अभी तक अेक बात मैंने नहीं कही — मैक्समूलरने चालीस साल पहले कहा था कि यूरोप अब समझता जा रहा है कि पुनर्जन्म कोअी

वाद या बहसकी चीज नहीं है, बल्कि अेक सचाअी है। यह भी पूरी तरह हिन्दू-धर्मकी ही देन है।

आज वर्णाश्रम-धर्मको और हिन्दू-धर्मको अुसके पुजारी गलत रूपमें दिखाकर अुससे अिनकार कर रहे हैं। अिसका अुपाय अुसे मिटाना नहीं, बल्कि अुसे शुद्ध करना है। हम अपने जीवनमें सच्ची हिन्दू-वृत्तिको सजीवन करें और फिर पूछें कि अिससे अन्तरात्माको संतोष होता है या नहीं।

नवजीवन, १८-१२-'२७

७

'ब्राह्मण और अब्राह्मण'

यह शीर्षक लगाकर कारवारसे श्री नाडकर्णी लिखते हैं:

"ब्राह्मण-अब्राह्मणके सवाल पर आपके तमाम विचारोंको, खासकर दक्षिणके पिछले दौरेमें कही गअी आपकी बातोंको, मैं लगातार दिलचस्पीके साथ पढ़ता रहा हूं। अिसके सिवा मैंने स्वतंत्र रूपसे भी अिस सवालका अध्ययन किया है। अिसलिअे अिस सवालकी आपने जो छानबीन की है, अुस पर अपने मनकी दो शंकाअें और मुश्किलें मैं आपके सामने पेश करनेकी हिम्मत करता हूं।

"आप ब्राह्मण-अब्राह्मणके सवालको वर्णाश्रम-धर्मके सिलसिलेमें पैदा हुआ जिन्दा सवाल मानते हैं। अिसमें मैं आपसे सहमत हूं। सिर्फ आपको 'वर्णाश्रम' के बदले 'वर्ण' शब्द काममें लेना चाहिये, क्योंकि अिसमें 'आश्रम' का तो सवाल ही नहीं है। लेकिन अिस विषयकी चर्चामें अखबारों और व्याख्यानोंमें 'वर्ण' के साथ 'आश्रम' को जोड़ देनेका रिवाज अितने लम्बे समयसे चला आ रहा है कि अब हमें अिसमें फेरबदल करनेकी जरूरत नहीं जान पड़ती।

"अिस बारेमें (ता० २२ और २९ सितम्बरके) 'यंग अिण्डिया' में छपे हुअे आपके भाषणोंको लूं। अिस विषय पर आखिरी भाषण

आपने तंजोरमें किया है। दुःखके साथ कहना चाहिये कि अुसमें आप 'सच्चे वर्णाश्रम-धर्म' का बयान करनेका भारी लालच देकर अेकदम रुक गये हैं और आपने कहा है: 'सुननेवालोंके अितने भारी समाजके सामने मुझे अिस विषयमें गहरा अुतरना अुचित नहीं है।' मैं चाहता हूं कि अब मेरे अिस पत्रसे आपको यह बयान 'यंग अिण्डिया' के पढ़ने-वालोंके सामने रखनेकी बात सूझे। अिस व्याख्यानमें 'मूल' 'आदर्श' वर्णाश्रम-धर्मके बारेमें बोलते हुअे आपने कहा है: 'सच पूछा जाय तो दुनियामें किसी भी जगह मनुष्य-समाज अिस नियमका विरोध नहीं कर सका है।' अिसी तरह कडलोरमें आपने कहा है: 'पश्चिमी कौमोंको और अिस्लामको भी अनजानमें अिस धर्म पर चलना पड़ता है।'

"आपके ये वचन छुटपुट होते तो जात-पांत (या वर्ण) के किसी भी समझदार विरोधीको — कितने ही कट्टर विरोधीको भी — 'वर्ण' नामके रहते हुअे भी अुसके अुस अर्थ पर आपत्ति करनेका कारण नहीं था, क्योंकि आपके अिन वचनोंमें आपने वर्णका अर्थ अितना ही किया है: दूसरे देशों और दूसरे धर्मोंमें जो कायदा कुदरती तौर पर मौजूद है और जिसके कारण 'मेहनतका बंटवारा' पीढ़ी-दर-पीढ़ीकी चीज हो जाता है, वही कायदा वर्ण है। आपकी वर्ण-व्यवस्थाका मतलब अितना ही होता, तो हिन्दुस्तानमें ब्राह्मण-अब्राह्मणका सवाल या छूत-अछूतका घोटाला पैदा ही न हुआ होता। लेकिन वर्ण-व्यवस्था आप कहते हैं वैसी नहीं है। जो चीज वर्ण-व्यवस्थाके नामसे करीब-करीब हमेशा पहचानी गअी है, वह तो बनावटी तौर पर कायम रखा हुआ और निहायत कड़ा सामाजिक भेद है। अिसका दूसरा नाम 'जाति' है। जातियां जैसी 'अेक समय' थीं, वैसी चार हों या आजकी तरह चालीस हजार हों, दोनों असलमें अेक ही हैं। यह अधिकार और बन्धनके बंटवारेकी, सिर्फ जन्मको ध्यानमें रखकर की हुअी, व्यवस्था है।

"अिसकी मिसाल देखनी हो तो अयोध्याके राजा रामचन्द्रके दिन याद करें। आप जानते ही होंगे कि पुराने जमानेके अिस पूजा करने लायक क्षत्रिय राजाने अपनी प्रजाके अेक दुःखी ब्राह्मणकी

फरियाद सुनकर अपनी ही प्रजाके अेक शूद्रका सिर काट दिया था; —सिर्फ अितनी सी बात पर कि अुसने चौथे आश्रमके योग्य तप करके, जिसकी शूद्रोंके लिअे मनाही थी, ब्राह्मणोंकी 'आध्यात्मिक' ठेकेदारी पर 'हमला' किया था! रामायणकी अुजली कहानीमें अिस काले धब्बेको आप रूपक कहकर अलग निकाल कर नहीं रख सकते। यह कहनेसे काम नहीं चलेगा कि यह कहानी मूल रामायणमें क्षेपक या बादमें मिलायी हुअी होगी, क्योंकि यह रामायणमें कअी सदियोंसे है और लोग अुसे बिना तकरार किये मानते आये हैं। अिसके लिअे कोअी बहाने या बचाव ढूंढ़े बिना आपको साफ तौर पर स्वीकार करना चाहिये कि यह कहानी वर्णाश्रम पर — जिसकी आप हिमायत करते हैं अुस 'मूल' 'आदर्श' वर्णाश्रम पर भी — अेक धब्बा है। अब, महात्माजी, आप और मैं सिर्फ 'वैश्य' और 'ब्राह्मण' न रहकर (क्योंकि मैं जन्मसे ब्राह्मण हूं) सच्चे हिन्दू बनना चाहते हों, तो हमें रामके वक्तके अिस 'शूद्र' मुनि शंबूकको धार्मिक आजादीका पुरानेसे पुराना रक्षक और हिन्दुस्तानके, शायद सारी दुनियाके, अितिहासमें लिखा हुआ पहला शहीद मानकर अुसकी यादको पूजना चाहिये। महात्माजी, क्या आप अिसमें मेरा साथ देनेको तैयार हैं? अैसा करनेसे ही आजकी ब्राह्मण-विरोधी हलचलोंका जहर निकलेगा और अिस पुराने झगड़ेकी राखमें से अेकरूप और अेकदिल हिन्दू-धर्म पैदा होगा। मैं कहता हूं कि हिन्दू-धर्मको अब भी जीना और फलना-फूलना हो, तो शंबूकको न्याय मिलना चाहिये।

"वर्ण हिन्दू-समाजमें चल रहा अेक कुदरती कानून ही है, अैसा बयान करनेके बाद आप फौरन ही तंजोरके भाषणमें कहते हैं: 'मैं मानता हूं कि जैसे हर आदमीको अपने बापदादेकी शकल विरासतमें मिलती है, वैसे ही अुसे बापदादेके गुण और स्वभाव भी विरासतमें मिलते हैं। यह बात मान लेनेमें अिन्सानकी शक्तिका बचाव है। अैसा साफ स्वीकार करके हम अुसीके मुताबिक अमल करें, तो हमारी आर्थिक वासनाओं या लालच पर ठीक अंकुश रहे और हमारी शक्ति आध्यात्मिक खोज और आध्यात्मिक प्रगतिका क्षेत्र बढ़ानेके लिअे

खुली हो जाय।' अैसा हो तो सब गांधियोंको गांधीपन और रामनाम अिन दोसे ही चिपटे रहना चाहिये, और गृहस्थकी जिन्दगी खतम करनेके बाद ठीक अुम्रमें विधिवत् चौथे आश्रममें दाखिल न हों तब तक देशके सामाजिक या राजनीतिक सुधारमें कभी सिर न मारना चाहिये। नहीं तो वैश्यका राजनीतिमें पड़ना ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी 'आध्यात्मिक ठेकेदारी' पर हमला करने-जैसा होगा। लेकिन क्या यह नियम भलाअी करनेवाला साबित होगा? और फिर पीढ़ी-दर-पीढ़ीवाले नियमको आप कौनसा स्थान देते हैं?

"हम अिस बारेमें जरा विचार करेंगे तो दीयेकी तरह दिखाअी देगा कि पीढ़ी-दर-पीढ़ीके कानूनके साथ धर्मके नाम पर अत्याचारी बन्धनोंको जोड़ कर हमने अिस नियम पर जरूरतसे ज्यादा जोर दिया है। अिसकी गवाही अितिहास देता है कि पिछले समयमें अिस नियमने हिन्दुओंको बड़ी नाजुक घड़ियोंमें धोखा दिया है। अकबरकी हुकूमतके शुरूमें हिन्दुस्तानमें फिरसे हिन्दू राज्य कायम करनेका हेमूका बड़ा साहसी और लगभग सफल होने पर आया हुआ प्रयत्न बेकार गया। अिसका सबब, जहां तक मुझे याद है, यह था कि दुश्मन अुसकी फौजको यह समझा सका कि हेमू राजपूत खानदानका न होकर 'हलका' है अिसलिअे अुसे छोड़ दो! महाराष्ट्रमें — महान शिवाजी और पहले बाजीरावकी धरतीमें — अब्राह्मण मराठा राजकुटुम्बोंको कितने ही ब्राह्मण नेताओंने क्षत्रिय माननेसे अिनकार कर दिया। यानी यह कि वैदिक मंत्रोंके साथ धर्मविधि करनेका क्षत्रियका हक अुन्हें न दिया गया। अिसीमें से ब्राह्मण-अब्राह्मणके झगड़ेकी शुरुआत हुअी — यह सोचते हुअे शर्म आती है। आपने जैसा तंजोरमें कहा वैसा भले ही कहिये कि 'आज वर्णाश्रमका जैसा अर्थ और अमल होता है, वह तो मूल वस्तुकी भयंकर विकृति है।'

"अब हम मनुस्मृति तक भी पीछे जायं, तो हमें जान पड़ेगा कि अुस जमानेमें भी अलग-अलग वर्णोंमें शादी-ब्याह होनेसे और दूसरे कारणोंसे चारके चालीस वर्ण तो हो ही चुके थे। वर्णोंमें आपसमें खाने-पीने और शादी-ब्याहकी कभी मनाही नहीं हुअी थी; फिर भी

अुस समय अेक वर्णका दूसरे वर्णके साथ शादी-व्याह अितना कम होता था, या अितना कम पसन्द किया जाता था कि अैसे विवाहोंसे होनेवाली औलादको अपनी नअी जातियां बनानी पड़ती थीं। (अिस परसे यह सवाल अुठता है कि आजकलके कायस्थोंको आप 'असली चार वर्ण'में से कौनसे वर्णमें रखेंगे?) और अुस जमानेमें भी चौथे वर्ण पर बड़ी सख्ती थी। वे कभी वेदके मंत्र गाते सुन लिये जाते, तो अुनके कानमें अुबलता हुआ सीसा भर दिया जाता था! अिस 'मूल' वर्णाश्रमके अंगोंको भी सत्य और अहिंसाके खिलाफ कहकर आप नहीं स्वीकारेंगे। पर कुछ भी हो, अिसमें शक नहीं कि आजके आपके वर्णाश्रमकी, जिसे आप 'मूलकी भयंकर विकृति' कहते हैं, यह पहली स्थिति है।

"यानी वर्ण चार हों या (आजकी तरह) चालीस हजार, अिनमें अेक तत्त्व समान है। वह यह है कि धन्धोंकी वंशपरम्परा कायम रखनी चाहिये। ब्राह्मणका लड़का चाहे अकुशल याज्ञिक निकले, लेकिन अुसके अुम्दा कारीगर बननेकी आशा होने पर भी अुसे कारीगर न बनकर याज्ञिक ही बनना चाहिये। नहीं तो अुसे जातिके बाहर रहना पड़ेगा। अिससे अुलटे, किसी अब्राह्मणमें कारीगरके बजाय याज्ञिक होनेकी ओर विशेष रुचि दिखाअी देती हो, फिर भी अुसे याज्ञिककी तरह समाज-सेवा करनेकी अिच्छा कभी नहीं रखनी चाहिये। हिन्दुओंके सिवा दूसरी जातियोंमें तो याज्ञिकका लड़का अपनी बुद्धिके अनुसार अैसे अेक या अनेक मार्गोंसे समाज-सेवा कर सकता है; किसी तरह भला-बुरा याज्ञिक ही होनेका बन्धन अुसके सिर नहीं होता। अिससे अुलटे, सैनिक या कारीगरका लड़का धर्म-पण्डित होकर भी चमक सकता है। हकीकत यह है कि अितिहासके कअी प्रतिभाशाली लोग हीन कुलमें पैदा हुअे और प्रतिभाशाली माता-पिताओंके बालक ज्यादातर साधारण दर्जेके निकले। जहां सैनिकोंने गणित-शास्त्रियोंको जन्म दिया, वहां गणित-शास्त्रियोंने अुपन्यासकार तथा अैसी ही कमजोर बुद्धिवाली सन्तान पैदा की है। अिस तरह वंशपरम्पराके नियममें सब कुछ नहीं आ जाता। वंशपरम्पराके नियमके सिवा 'परिस्थिति' और

दूसरी बहुत-सी बातें मिलकर आदमीका निर्माण करती हैं तथा समाजमें अुसकी जगह और समाज-सेवाका मार्ग निश्चित करती हैं।

"अिस तरह ब्राह्मण-अब्राह्मणके सवाल पर मैं अिस नतीजे पर पहुंचा हूं : जैसे आप जन्मसे वैश्य होनेके कारण हिन्दुस्तानकी खराब आर्थिक स्थितिके लिअे वैश्योंको जिम्मेदार समझते हैं, वैसे ही जन्मसे ब्राह्मण होनेके कारण मुझे यह कहनेमें जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती कि सारे हिन्दुस्तानकी आध्यात्मिक और आर्थिक दोनों तरहकी गुलामीके लिअे ब्राह्मण ही जवाबदेह हैं। जिन्हें बहुत मिला हुआ था, अुनसे बहुत पानेकी आशा भी रखी गअी थी। मगर अफसोस, छोटी नजर और स्वार्थबुद्धिसे पैदा हुअी संकुचित धर्मान्धताने आड़े आकर अुन्हें अपने जीवनका अच्छेसे अच्छा भाग समाजके चरणों पर रखनेसे रोक दिया। नतीजा यह हुआ कि ब्राह्मणोंके धर्मको माननेवालोंके साथ साथ ब्राह्मण भी गहरी अधोगतिमें पड़े हैं।"

नवजीवन, २०-११-'२७

८

वर्णाश्रम

पिछले अंकमें ब्राह्मण-अब्राह्मणके सवाल पर श्री नाडकर्णीका पत्र छापा था। तामिलनाडके पिछले दौरेमें मैंने अपने भाषणोंमें वर्णाश्रमके बारेमें अपने खयाल जाहिर किये थे और अुनमें से थोड़ा-बहुत भाग 'यंग अिण्डिया' में भी अुस वक्त दिया गया था। अब अुन्हीं विचारोंको अधिक विस्तारसे समझानेका श्री नाडकर्णीका निमंत्रण मैं मंजूर करता हूं।

सवालका मतलब साफ करनेके लिअे अेक बात कह दूं। अेक शूद्रने संन्यासी बननेकी धृष्टता की और अिसी पर रामने अुसका सिर काट डाला, अिस मशहूर कहानीको मैं अिस सवालमें नहीं मिला देना चाहता। मैं शास्त्रोंका शाब्दिक अर्थ नहीं करता और न अुन्हें अितिहास

ही मानता हूं। शंबूकका सिर अुड़ा देनेकी बात रामके सारे चरित्रसे मेल नहीं खाती। और अलग-अलग रामायणोंमें कुछ भी कहा गया हो, मैं तो मानता हूं कि मेरा राम शूद्रका तो क्या, किसी औरका भी सिर नहीं काट सकता। शंबूककी कहानीसे अगर कुछ साबित होता है तो अितना ही कि अिस कहानीके समयमें जो शूद्र अमुक विधियां करते थे, वे मौतकी सजाके लायक समझे जाते थे। हम यह नहीं जानते कि यहां शूद्रका मतलब क्या है। अिस सारी कथाका अर्थ मैंने रूपकके तौर पर लगाय जाते भी सुना है। मगर अिससे अिस सफाअीमें फर्क नहीं पड़ता कि किसी समयमें हिन्दू-धर्मके विकासक्रममें शूद्रों पर कुछ अनुचित बंधन लगाये गये थे। सिर्फ शंबूकका सिर काटनेकी जो बात कही जाती है, अुसके लिअे प्रायश्चित्त करनेमें श्री नाडकर्णीका साथ देनेकी मुझे जरूरत नहीं; क्योंकि मैं यह मानता ही नहीं कि अिस नामके किसी अैतिहासिक व्यक्तिका सिर राम नामके किसी अैतिहासिक व्यक्तिके हाथों काटा गया था। हिन्दू-धर्मके निचले वर्गों पर — खासकर अछूत कहलानेवाले वर्गों पर गुजरे हुअे जुल्मोंके लिअे तो अेक हिन्दूके नाते मैं अपने जीवनके हर पल प्रायश्चित्त कर रहा हूं। मेरी राय यह है कि वर्णाश्रमके सवालकी धर्मकी रूसे की गअी छानबीनमें शंबूकके जैसे दृष्टान्तोंके लिअे स्थान नहीं है।

अिसलिअे, मेरा अितना ही कहनेका अिरादा है कि जिसे मैं वर्णाश्रम मानता हूं वह क्या चीज है। वर्णाश्रमके जो मानी मैं लगाता हूं वे हिन्दू-धर्ममें से नहीं निकल सकते, यह कोअी साबित करके बता दे तो मुझे वर्ण-व्यवस्थासे अिनकार करनेमें जरा भी संकोच नहीं होगा। जैसा श्री नाडकर्णी कहते हैं, वर्ण और आश्रम दो जुदा शब्द हैं। जहां हमारी आश्रम-व्यवस्था मनुष्यको जिन्दगीका मकसद पूरा करनेके ज्यादा लायक बनाती है, वहां अितना वर्ण-धर्म तो अुसके लिअे लाजिमी और अनिवार्य ही है। वर्ण-धर्म कहता है कि मनुष्यको अपने गुजरके लिअे धर्मविहित अपने बापदादेका धन्धा ही करना चाहिये। मैं मानता हूं कि यह कानून सब जगहके लिअे है और सारे मानव-कुटुम्ब पर राज्य करता है। अिसे तोड़नेसे हमें जो गम्भीर परिणाम

भोगने पड़े हैं, वही सबको भोगने पड़ते हैं। लेकिन अनजानमें ही सही, ज्यादातर मनुष्य अपने पुरखोंका ही पेशा करते हैं। अिस कानूनकी खोज करके और समझके साथ अिसका अमल करके हिन्दू-धर्मने मानव-जातिकी भारी सेवा की है। अगर मनुष्य और पशुके जीवनमें अितना ही फर्क हो कि मनुष्यका फर्ज अीश्वरको पहचानना है, तो अिससे यह नतीजा निकलता है कि अुसे अिस बातकी खोजमें ही अपनी जिन्दगीका बड़ा हिस्सा न लगा देना चाहिये कि अपने गुजारेके लिअे कौनसा धंधा ज्यादा अनुकूल होगा। अुलटे, अुसे यह समझना चाहिये कि बापका पेशा करना ही अुसके लिअे अुत्तम मार्ग है और फिर अपने बचे, हुअे समय और बुद्धिको मानव-जातिके लिअे अीश्वरका बताया हुआ फर्ज अदा करनेमें लगाना चाहिये।

अिस तरह, श्री नाडकर्णीकी बताअी हुअी मुश्किल यहां खड़ी नहीं होती, क्योंकि अपनी अिच्छासे सेवाके अनेक काम करने और अुसकी योग्यता पैदा करनेकी किसीके लिअे मनाही है ही नहीं। अिसलिअे ब्राह्मणके घर जन्मे हुअे श्री नाडकर्णी और वैश्यके घर पैदा हुआ मैं जरूरतके वक्त तनखाह लिये बगैर राष्ट्रीय स्वयंसेवकका, नर्सका और भंगीका काम जरूर कर सकते हैं। अिससे वर्ण-धर्म नहीं टूटता; पर अिस धर्मके अनुसार अुन्हें ब्राह्मणके नाते अपनी रोजीके लिअे तो पड़ोसियोंकी दयाका ही आसरा रखना चाहिये और मुझे वैश्य होनेके कारण गांधीके धन्धेसे ही गुजर चलाना चाहिये। हरअेकको अुपयोगी सेवाका कोअी भी काम करनेकी स्वतंत्रता है, मगर अिसके लिअे बदला मांगनेका अधिकार नहीं।

वर्ण-धर्मकी अिस कल्पनामें कोअी अेक धन्धा दूसरेसे अूंचा नहीं है। हरअेक पेशा जहां तक वह व्यक्तिकी या समाजकी नीतिके खिलाफ न हो वहां तक अेकसा और अिज्जतका है। समाजमें जो दरजा ब्राह्मणका है, वही भंगीका है। क्या मैक्समूलरने नहीं कहा है कि हिन्दू-धर्मने जीवनको दूसरे सब धर्मोंसे अधिक कर्तव्यरूप माना है?

हां, अितना जरूर मानना पड़ेगा कि हिन्दू-धर्मके विकासक्रममें किसी समय अुसमें गंदे रिवाज घुस गये और अूंच-नीचकी सड़ांधने

पैठकर अुसे बिगाड़ दिया। लेकिन अूंच-नीचका खयाल हिन्दू-धर्ममें सब जगह फैली हुअी यज्ञकी, त्यागकी भावनासे बिलकुल बेमेल मालूम होता है। जीवनकी जिस व्यवस्थाकी बुनियाद अहिंसा पर खड़ी है और हर प्राणीके लिअे शुद्ध प्रेम जिसका असली रूप है, अुसमें किसी भी वर्गको दूसरेसे अूंचा माननेकी गुंजाअिश ही कहां हो सकती है?

अिस वर्ण-धर्मके खिलाफ कोअी यह न कहे कि अिसीके सबबसे जीवन नीरस हो जाता है और सारी अुच्च आकांक्षाअें मारी जाती हैं। मेरी राय यह है कि वर्ण-धर्मके कारण ही जिन्दगी सबके लिअे मुमकिन होती है। मनुष्यकी बड़ीसे बड़ी आकांक्षाके लायक अेक ही चीज — आत्मप्राप्ति — है, और अुसे अुस मंजिल पर पहुंचानेवाला भी वर्ण-धर्म ही है। आज तो सब स्वभावसे ही पलभरमें मिटनेवाले रुपये-पैसेके कामोंके पीछे विचार और पुरुषार्थ दौड़ाते दीखते हैं और अिसमें अितने फंस जाते हैं कि जो अेकमात्र जरूरी चीज है अुसे भूल जाते हैं।

मुझे कोअी यह कहे कि वर्णका जो मतलब मैंने बताया है, अुसकी ताअीद करनेवाली कोअी बात हिन्दू-धर्मके आचारग्रंथ स्मृतियोंमें नहीं है, तो अुसे मेरा जवाब यह है कि जीवनके बुनियादी अटल सूत्रों पर रची हुअी आचारकी स्मृतियोंमें हमारे नये-नये अनुभवों और नये-नये निरीक्षणके मुताबिक समय समय पर फेरबदल हुआ ही करते हैं। स्मृतियोंमें अैसे कितने ही नियम बताये जा सकते हैं, जो लाजिमी तो क्या अमल करने लायक भी नहीं मालूम होते। जिन्दगीके अटल अुसूल तो अिने-गिने ही होते हैं और वे सब धर्मोंमें अेकसे हैं। जुदा जुदा धर्म अिन पर जुदा जुदा तरहसे अमल करते हैं। और कोअी भी धर्म अभी तक सारे संभव तरीकोंसे अिन पर अमल नहीं कर सका है। जैसे जैसे विचार फैलते जायं और नयी नयी हकीकतोंकी जानकारी बढ़ती जाय, वैसे वैसे अिन अुसूलोंका विस्तार भी होना चाहिये। मैं मानता हूं कि मनुष्यका अनुभव बढ़ता है, अुसीके साथ शब्दोंके अर्थका भी विकास होता है। यज्ञ, सत्य, अहिंसा, वर्णाश्रम वगैरा शब्दोंके पुराने जमानेमें जो अर्थ थे, अुनसे आज कितने ही व्यापक और समृद्ध हो

गये हैं। यह नियम 'वर्ण' शब्द पर लागू करें, तो अिसके चालू अर्थको पकड़े रहना बेजा है, बेवकूफी है। अगर हम यह मानते हों कि अिस जमानेकी जरूरतोंके साथ या हमारी नैतिक भावनाके साथ अिसका मेल नहीं बैठता, तो अिसके पीछे पड़े रहना आत्महत्या करने जैसा होगा।

अिस तरह वर्णका विचार करें, तो अुसका आजकलकी जात-पांतसे कोअी सम्बन्ध नहीं। अिसी तरह दूसरे वर्णके साथ खाने-पीने और शादी-व्याहकी मनाही भी वर्ण-धर्मके पालनका जरूरी अंग नहीं है। हो सकता है कि ये बातें वर्ण-व्यवस्थाके बचावके लिअे जारी की गअी हों। संयमकी बुनियाद पर खड़ी की गअी किसी भी जीवन-व्यवस्थामें मनमाने ब्याह पर रोक लगाना जरूरी है। मनमाने खान-पानकी रोक सफाअीके खयालसे या रहन-सहनके भेदसे पैदा होती है। लेकिन पहले अिस रोककी परवाह न करनेवाला आदमी किसी भी तरहकी समाज या कानूनकी सजाके लायक या वर्णके बाहर निकालनेके लायक नहीं समझा जाता था, और न आज भी समझा जाना चाहिये।

असलमें वर्ण चार थे। यह बंटवारा समझकर किया हुआ था और समझमें आने लायक था। लेकिन वर्णकी संख्या वर्ण-धर्मका कोअी अंग नहीं थी। जैसे, दरजीको लुहार न बनना चाहिये, हालांकि दोनों वैश्य माने जाते हों और माने जाने चाहिये।

तामिलनाडमें सबसे जोरदार आपत्ति तो मैंने यह सुनी कि वर्ण-व्यवस्थाका मेरा अर्थ देखते हुअे वह कितनी भी अच्छी और निर्दोष जान पड़ती हो, लेकिन अुसके साथ जो बदबू लगी हुअी है अुसकी वजहसे या तो अुसे कोअी नया नाम देना चाहिये या अुसको बिलकुल मिटा देना चाहिये। यह आपत्ति करनेवालोंको डर यह था कि मेरे अर्थकी तरफ ध्यान नहीं दिया जायगा और वर्णके नाम पर आज हिन्दू-धर्ममें जो बेहूदा भेदभाव और ज्यादतियां हो रही हैं, अुनकी हिमायतमें मेरी बातको सबूतके तौर पर पेश किया जायगा। अिन लोगोंने यह भी कहा कि मामूली लोगोंकी समझमें जात-पांत और वर्णके मानी

अेक ही हैं; अिसके सिवा वर्णका संयम कहीं नहीं पाला जाता, अुलटे जगह जगह वर्णका जुल्म ही देखनेमें आता है।

अिसमें शक नहीं कि अिन सब आपत्तियोंमें बहुत सार है। मगर अिस तरहकी आपत्तियां तो अेक समयकी अच्छी मगर आजकी सड़ी हुअी बहुतेरी व्यवस्थाओंके खिलाफ अुठायी जा सकती हैं। सुधारकका काम यह है कि वह अुस व्यवस्थाकी ही जांच करे और अुसकी खराबियां दूर होने जैसी हों तो अुन्हें सुधारनेमें लग जाय। मगर वर्ण सिर्फ मनुष्यकी कायम की हुअी व्यवस्था नहीं, बल्कि अुसका ढूंढ़ा हुआ कानून है। अिसलिअे अुसका नाश नहीं किया जा सकता। अिसका छिपा हुआ भेद और अुसकी ताकतें ढूंढ़नी चाहिये और समाजकी भलाअीके लिअे अुनका अिस्तेमाल होना चाहिये। हमने देख लिया कि वर्ण-धर्म या वर्ण-व्यवस्था खुद बुरी नहीं है; बुराअी तो अिसके साथ लगी हुअी अूंच-नीचकी भावनामें है।

अेक सवाल यह भी अुठता है कि आजकल जब चारों वर्ण या अुपवर्ण सब अंकुश तोड़ रहे हैं, अपना आर्थिक लाभ बढ़ानेके लिअे अुचित-अनुचित सारे तरीके काममें ले रहे हैं और जब कुछ वर्ग दूसरोंसे अूंचे होनेका दावा करते हैं और दूसरे अिनका अुचित विरोध करते हैं, तब वर्ण-धर्म पर अमल किस तरह किया जाय? हम ध्यान न देंगे तो भी यह कानून खुद अपना काम किये बिना नहीं रहेगा। लेकिन वह सजाके तौर पर होगा। अगर बरबादीसे बचना हो, तो हमें भी अिसके वश होना ही पड़ेगा। और आज जब हम अपने पर भी यही हैवानी कानून लागू करनेमें मशगूल हैं कि 'सबसे लायक यानी (शरीरसे) सबसे समर्थ ही बचेगा', तब यह मानना अच्छा है कि हम सब अेक ही वर्णके यानी शूद्र हैं; फिर भले ही कुछ लोग शिक्षक हों, कुछ सिपाही हों या दूसरे कुछ व्यापारमें लगे हों। मुझे याद है कि १९१५ में नेलोरकी सामाजिक परिषद्के सभापतिने यह सुझाया था कि चूंकि पहले सब ब्राह्मण थे, अिसलिअे सबको ब्राह्मण मानना चाहिये और दूसरे वर्ण मिटा देने चाहिये। यह सुझाव मुझे अुस वक्त भी अजीब लगा था और आज भी

अजीब लगता है। ये सुधार अगर शान्तिसे करने हों, तो अूंचे कहलाने-वाले वर्णोंको नीचे अुतरना पड़ेगा। जिन्हें सदियोंसे अपनेको समाजमें नीचेसे नीचा माननेकी **तालीम** मिली है, वे अेकाअेक अूंचे कहलाने-वाले वर्णोंकी तरह साधन-सम्पन्न नहीं हो सकते। अिसलिअे अगर वे **सत्ता** लेना चाहें, तो सिर्फ खून बहाकर या दूसरे शब्दोंमें कहें तो समाजका संहार या नाश करके ही ले सकते हैं।

समाजको फिरसे बनानेकी अपनी योजनामें मैंने 'अछूत' जातियोंका जिक्र नहीं किया है, क्योंकि वर्ण-धर्ममें या हिन्दू-धर्ममें मैं अछूत-पनकी गुंजाअिश नहीं देखता। ये वर्ग दूसरे सबके साथ शूद्रोंकी जमातमें मिल जायंगे। अिस शूद्र वर्गमें से पवित्र होकर धीरे धीरे दूसरे तीन वर्ण पैदा होंगे। अिनके पेशे अलग अलग होते हुअे भी अिनका दरजा बराबर होगा। ब्राह्मण बहुत थोड़े होंगे। क्षत्रियोंका वर्ग अिससे भी थोड़ा होगा और वे आजकलकी तरह भाड़ेके सिपाही या निरंकुश राजा न होंगे, बल्कि राष्ट्रके सच्चे रक्षक और राष्ट्रकी सेवामें जान लड़ा देनेवाले होंगे। सबसे छोटा वर्ग शूद्रोंका होगा, क्योंकि अच्छे बन्दोबस्तवाले समाजमें अिन्सानोंसे कमसे कम मजदूरी कराअी जायगी। बड़ीसे बड़ी तादाद वैश्योंकी होगी। अिस वर्णमें तमाम धंधे — किसान, व्यापारी, कारीगर वगैरा सब — शामिल होंगे। यह योजना खयाली पुलाव पकाने जैसी लग सकती है। लेकिन आज जिस समाजको म तितर-बितर होता देख रहा हूं, अुसके निरंकुश और मनमाने व्यवहारके अनुसार जीनेके बजाय मैं अपने कल्पनाके अिस मनोराज्यमें विचरना ज्यादा पसन्द करता हूं। किसी मनुष्यका मनोराज्य समाजके द्वारा मंजूर न हो, तो भी अुसे अुसमें रहने और विचरनेकी छूट है। हरअेक सुधारकी शुरुआत व्यक्तिसे ही हुअी है। जिस सुधारमें सुधारकके प्राण हों और जिसे शूरवीर आत्माका सहारा हो, अुसे सुधारकका समाज स्वीकारे बिना नहीं रहता।

नवजीवन, २७-११-'२७

९

वर्ण और कौम

अेक विद्यार्थी अपना नाम देकर लिखता है:

"मैं जानता हूं कि हिन्दुस्तानकी साम्प्रदायिक समस्याके बारेमें आप दिन-रात तेजीसे विचार कर रहे हैं और आपने जाहिर किया है कि जिन दो शर्तों पर आप अगली गोलमेज परिषद्‌में भाग ले सकते हैं, अुनमें से अेक शर्त अिस सवालका हल है। आज छोटी जातियों या अल्पमतवाली कौमोंके सवालका हल बहुत कुछ अुनके नेताओं पर निर्भर है। मगर तमाम कौमी झगड़ोंकी जड़ अुखाड़ फेंकनेके लिअे ये लोग शायद किसी काम-चलाअू समझौते पर पहुंच भी जायं, तो अुससे काम पूरा नहीं होता।

"सारे कौमी भेदकी जड़ काटनेके लिअे बहुत ज्यादा मजबूत सामाजिक मेलजोल अनिवार्य है। आज तो हर कौमका सामाजिक जीवन दूसरी सभी जातियों और कौमोंकी जिन्दगीके साथ बिल-कुल अछूत-जैसा होता है। हिन्दू-मुसलमानोंकी ही बात लीजिये। हिन्दुओंके बड़े त्योहारों पर मुसलमान भाअी हिन्दुओंकी आव-भगत नहीं करते। अिसी तरह मुसलमान त्योहारोंकी बात है। अिससे जो कौमी अलगावकी भावना पैदा होती है, वह देशकी भलाअीके लिअे बहुत ही नुकसानदेह है।

"दूसरा जो अुपाय कितने ही लोगोंने सुझाया है, वह है अलग अलग जातियोंके बीच ब्याह-शादीका संबंध। जहां तक मैं आपकी मान्यताओं या विश्वासोंको जानता हूं, आप जात-पांतके बारेमें मजबूत विचार रखते हैं; यानी अिसका यह मतलब हुआ कि आपकी रायमें तो अेक जातिका दूसरी जातिमें ब्याह होना

लंबे समय तक हिन्दुस्तानियोंको नापसन्द ही रहेगा। जब तक अिन दो कौमोंके बीच कुछ भी अलगाव रहेगा, तब तक कौमी भेदभावको पूरी तरह मिटा देना बहुत ही मुश्किल काम है।

" 'नये हिन्दुस्तान' के धर्मराज्यमें अलग अलग जातियोंमें आपके खयालसे किस तरहके आपसी संबंध रहेंगे? सामाजिक व्यवहारमें क्या वे आजकी तरह ही अलग अलग रहेंगी? मैं मानता हूं कि अिस सवालके हल पर भारतीय राष्ट्रके भावी हितका दारमदार है।

"अेक बात और। अगर हम जात-पांतको मानें तो अछूत कहलानेवाले लोगोंकी हालत बहुत नाजुक हो जाती है। अगर हमें अछूतोंको अूंचा अुठाना है, तो हम जात-पांतके बंधन चालू रख ही नहीं सकते। जाति और धर्मका भेद, जो अलगावका वायुमंडल पैदा करता है, दुनिया भरके साथ भाअीचारा बढ़ानेके खयालसे शाप-जैसा है। जात-पांतकी व्यवस्था अूंच-नीचकी झूठी भावना पैदा करती है। अिसमें से बुरे नतीजे निकलते हैं। तब यह कैसे बताया जा सकता है कि जात-पांतके अिन पुराने बंधनोंके बारेमें श्रद्धा ठीक है।

"ये सवाल मेरे दिमागमें महीनोंसे घूम रहे हैं, और मैं आपका दृष्टिबिन्दु समझ नहीं सका हूं। अिन प्रश्नोंका हल निकालनेके लिअे मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मेरी मुश्किल दूर करें।

"मैं अलाहाबाद युनिवर्सिटीमें बी० अे० क्लासका विद्यार्थी हूं। किसी भी तरह हिन्दू-मुसलमानोंमें भाअीचारेकी भावना पैदा करनेको मैं बेचैन हूं। लेकिन मेरे सामने मुश्किलें बहुत हैं। अिनमें से अेक जात-पांतके बारेमें है, जो मैंने आपके सामने पेश की है। दूसरी मांस खानेके बारेमें है। मुसलमानोंके जिस खानेमें मांस परोसा जाय, अुसमें मैं कैसे शरीक हो सकता हूं? मुझे रास्ता बतानेवाला आपसे अच्छा कोअी नहीं है। अिसलिअे अिस पत्रके जरिये आपके पास हाजिर होता हूं।"

यह कहना पूरी तरह सच नहीं कि हिन्दू-मुसलमान अपने-अपने त्योहारके दिन अेक-दूसरेकी आवभगत नहीं करते। लेकिन मैं यह जरूर चाहूंगा कि अैसी आवभगत बहुत ज्यादा मौकों पर और काफी अधिक मात्रामें हो।

जात-पांतके बारेमें मैंने बहुत बार कहा है कि आजके अर्थमें मैं जात-पांतको नहीं मानता। यह 'फालतू अंग' है और तरक्कीके रास्तेमें रुकावट जैसा है। अिसी तरह आदमी आदमीके बीच अूंच-नीचका भेद भी मैं नहीं मानता। हम सब पूरी तरह बराबर हैं। लेकिन बराबरी आत्माकी है, शरीरकी नहीं। अिसलिअे यह मानसिक अवस्थाकी बात है। बराबरीका विचार करनेकी और अुसे जोर देकर जाहिर करनेकी जरूरत पड़ती है, क्योंकि दुनियामें अूंच-नीचके भारी भेद दिखाअी देते हैं। अिस बाहरसे दीखनेवाले अूंच-नीचपनमें से हमें बराबरी पैदा करनी है। कोअी भी मनुष्य अपनेको दूसरेसे अूंचा मानता है, तो वह अीश्वर और मनुष्य दोनोंके सामने पाप करता है। अिस तरह जात-पांत जिस हद तक दरजेका फर्क जाहिर करती है, अुस हद तक वह बुरी चीज है।

लेकिन वर्णको मैं अवश्य मानता हूं। वर्णकी रचना पीढ़ी-दर-पीढ़ीके धंधोंकी बुनियाद पर हुअी है। मनुष्यके चार धंधे सार्वत्रिक हैं — दान देना, दुखीको बचाना, खेती तथा व्यापार और शरीरकी मेहनतसे सेवा। अिन्हींको चलानेके लिअे चार वर्ण बनाये गये हैं। ये धंधे सारी मानव-जातिके लिअे समान हैं, पर हिन्दू-धर्मने अुन्हें जीवन-धर्म करार देकर अुनका अुपयोग समाजके संबंधों और आचार-व्यवहारको नियममें लानेके लिअे किया है। गुरुत्वाकर्षणके कानूनको हम जानें या न जानें, अुसका असर तो हम सभी पर होता है। लेकिन वैज्ञानिकोंने अुसके भीतरसे अैसी बातें निकाली हैं, जो दुनियाको चौंकानेवाली हैं। अिसी तरह हिन्दू-धर्मने वर्ण-धर्मकी तलाश करके और अुसका प्रयोग करके दुनियाको चौंकाया है। जब हिन्दू जहालतके शिकार हो गये, तब वर्णके बेजा अिस्तेमालके कारण अनगिनत जातियां बनीं और रोटी-बेटी-व्यवहारके बेजरूरी और हानिकारक बन्धन पैदा हो

गये। वर्ण-धर्मका अिन पाबन्दियोंके साथ कोअी नाता नहीं है। अलग अलग वर्णके लोग आपसमें रोटी-बेटी-व्यवहार रख सकते हैं। चरित्र और तन्दुरुस्तीके खातिर ये बन्धन जरूरी हो सकते हैं। लेकिन जो ब्राह्मण शूद्रकी लड़कीसे या शूद्र ब्राह्मणकी लड़कीसे ब्याह करता है, वह वर्ण-धर्मको नहीं मिटाता।

अपने धर्मके बाहर शादी करना दूसरा ही सवाल है। अिसमें भी जब तक स्त्री-पुरुष दोनोंको अपना-अपना धर्म पालनेकी छूट हो, तब तक अिस तरहके विवाह-संबंधमें नैतिक दृष्टिसे मुझे कोअी बाधा नहीं दीखती। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि अैसी शादियोंसे शांति कायम होगी। शांति कायम हो जानेके बाद जरूर अैसे ब्याह-शादी हों। जब तक हिन्दू-मुसलमानोंके दिल खिंचे हुअे हैं, तब तक हिन्दू-मुसलमानोंके ब्याह-शादियोंकी हिमायत करनेकी कोशिशका नतीजा सिवा आपत्तिके मुझे कुछ नहीं दीखता। अैसे अिक्के-दुक्के संबंध सुखदायी साबित हो सकते हैं। लेकिन अैसे अपवाद अुन्हें आम बनानेकी हिमायतके कारण नहीं समझे जा सकते। हिन्दू-मुसलमानोंके बीच थाली भेजनेका व्यवहार तो आज भी काफी है। लेकिन अिससे भी शांति तो बढ़ी ही नहीं। मेरा पक्का विश्वास है कि रोटी-बेटी-व्यवहारका कौमी अेकताके साथ कोअी ताल्लुक नहीं। झगड़ेके कारण तो आर्थिक और राजनीतिक हैं। और अिन्हींको दूर करना है। यूरोपमें रोटी-बेटी-व्यवहार है। फिर भी यूरोपके लोग आपसमें जिस तरह लड़ लड़कर मरते हैं, अुस तरह तो हम हिन्दू-मुसलमान अितिहास भरमें कभी नहीं लड़े। हमारे आम लोग तो अिससे अलग ही रहे हैं।

'अछूत' अेक जुदा वर्ग है — हिन्दू-धर्मके माथे पर लगा हुआ कलंक है। जात-पांत रुकावट है, पाप नहीं; जब कि अछूतपन पाप है, सख्त जुर्म है। और हिन्दू-धर्म अिस बड़े सांपको समय रहते नहीं मार डालेगा, तो यह अुसको खा जायगा। अछूतोंको अब हिन्दू-धर्मके बाहर हरगिज न समझना चाहिये। अुन्हें हिन्दू समाजके प्रतिष्ठित

सदस्य समझना चाहिये, और अुनके धंधेके मुताबिक वे जिस वर्णके लायक हों अुसी वर्णके अुन्हें समझना चाहिये।

वर्णकी मेरी की हुअी व्याख्याके हिसाबसे तो आज हिन्दू-धर्ममें वर्ण-धर्मका अमल होता ही नहीं। ब्राह्मण कहलानेवाले विद्या पढ़ाना छोड़ बैठे हैं। वे और और धंधे करने लगे हैं। यही बात थोड़ी-बहुत दूसरे वर्णोंके बारेमें भी सच है। असलमें विदेशी हुकूमतके नीचे होनेके कारण हम सब गुलाम हैं और अिस तरह शूद्रसे भी हलके — पश्चिम-वालोंकी निगाहमें अछूत हैं।

यह खत लिखनेवाला अन्न ही खाता है, अिसलिअे मांस खानेवाले मुसलमानोंके साथ खानेमें अुसे मुश्किल हो रही है। मगर अुसे याद रखना चाहिये कि मांस खानेवाले मुसलमानोंके बजाय हिन्दू ज्यादा हैं। अन्नाहारीको जब तक अैसी खुराक परोसी जाय, जिसके खानेमें कोअी हर्ज नहीं हो और जो सफाअीसे पकाअी गअी हो, तब तक अुसे हिन्दू या दूसरे मांस खानेवालोंके साथ बैठकर खानेकी छूट है। फल और दूध तो जहां भी वह जायगा हमेशा मिल ही जायंगे।

नवजीवन, ७–६–’३१

१०

वर्ण-धर्म

“अूंच-नीचका भाव मिटा दिया जाय, छोटी जातियां मिटा दी जायं, भोजन-व्यवहार किसी भी वर्गके साथ किया जाय और आन्तर-जातीय विवाहकी गुंजाअिश रखी जाय — अैसी हिमायत करनेके बाद भी यह कहना क्या मानी रखता है कि वर्ण-व्यवस्था हम तोड़ना नहीं चाहते और हम वर्ण-व्यवस्थाको बढ़ाना और सुधारना चाहते हैं?

“अिसी सवालमें से अेक सवाल यह पैदा होता है: ब्राह्मण और वैश्य आपसमें ब्याह कर सकते हैं और अिसे आप धर्मके खिलाफ नहीं मानते, तो ब्राह्मण और शूद्रके बारेमें भी

आप यही दलील रखेंगे न? अैसी हालतमें हरिजनोंके मुखिया अूंचे वर्णवालोंसे कहेंगे कि 'जब आप हमें अपनी लड़कियां देंगे तभी हम मानेंगे कि आप हमें बराबरीके समझते हैं।' तो आपके अिस कथनका भरोसा नहीं होता कि आप वर्ण-व्यवस्थाको तोड़ना नहीं चाहते। मुझे यह साफ जानना है कि खाने-पीने और शादी-ब्याहके बारेमें आप क्या मर्यादा रखते हैं?"

यह सवाल अेक हरिजनसेवकने किया है। मेरी बात अिसलिअे समझमें नहीं आती कि आज हम जिसे वर्ण-व्यवस्था मानते हैं अुसे मैं नहीं मानता। आजकी वर्ण-व्यवस्थाका मतलब सिर्फ छुआछूत और रोटी-बेटी-व्यवहारकी पाबन्दियां हैं। आजकलके छुआछूतको मैं अखा भगतकी भाषामें 'फालतू अंग' मानता हूं, छोड़ने लायक मानता हूं। रोटी-बेटीकी पाबन्दीको वर्णका हिस्सा माननेके लिअे पुराने रिवाजके सिवा शास्त्रोंका कोअी आधार नहीं है।

अिससे अुलटे, वर्णका गुजारेके धंधेके साथ नजदीकका संबंध है। सबका धंधा ही अुनका अपना धर्म है। अुसे जो छोड़ता है, अुसका वर्ण बिगड़ जाता है और अुसका अपना नाश होता है; यानी अुसकी आत्मा मर जाती है। यह आदमी वर्णमें मिलावट पैदा करता है और अिससे समाजको नुकसान पहुंचता है, समाजकी व्यवस्था टूटती है। जब सभी अपना वर्ण छोड़ देते हैं, तब समाजकी कुव्यवस्था बढ़ती है, अन्धाधुन्धी फैलती है और समाजकी बर्बादी होती है। ब्राह्मणोंके वर्णने विद्या देनेका काम छोड़ा कि वह गिरा। क्षत्रियोंने प्रजाके बचावका काम छोड़ा कि अुनका वर्ण बिगड़ा। वैश्य द्रव्योपार्जन करना छोड़ दें तो वे वर्णसे गिरते हैं। शूद्र सेवा छोड़ें तो अुनका पतन होता है। सब अपने अपने धर्ममें लगे रहकर बराबरीके रहते हैं। जो अपना धर्म छोड़ता है, अुसीका पतन होता है। स्वधर्म छोड़नेवाले ब्राह्मणसे स्वधर्म पालनेवाला शूद्र अच्छा है।

अिस वर्णमें अधिकारकी गुंजाअिश नहीं है। यह सिर्फ धर्म है, फर्ज है। जहां फर्जकी बात है, वहां अूंच-नीचका खयाल रह ही नहीं सकता।

आज वर्ण-धर्म मिटा हुआ दीखता है। अेक वर्ण भी अपना धर्म छोड़ दे तो वर्ण मिट जाता है। आज तो ब्राह्मणने ब्राह्मणपन, क्षत्रियने क्षत्रियपन और वैश्यने वैश्यपन छोड़ दिया है। कोअी यह शंका कर सकता है कि रुपया कमानेके लिअे तो सभी पचते हैं, अिसलिअे वैश्यपन कायम है अैसा माननेमें क्या बुराअी है? मगर अैसा कहना ठीक नहीं। आज वैश्य अपने ही लिअे रुपया पैदा करते हैं, अिसलिअे गीताकी भाषामें वे चोर माने जायेंगे। वैश्यका धर्म रुपया पैदा करके अुसमें से अपने गुजारेके लायक रखकर बाकी समाजके काममें लगाना है। अैसा वैश्यधर्म पालनेवाला कोअी मुश्किलसे ही पाया जाता है। अिसलिअे वैश्यका वर्ण भी मिट ही गया।

अब रह गया शूद्रका धर्म। अिसे पालनेवाले कितने शूद्र निकलेंगे? बेमनसे की हुअी मजदूरी सेवा नहीं है। धर्ममें जबरदस्तीका काम नहीं है। धर्मको समझकर समाजकी तरक्कीके लिअे अपनी मर्जीसे की हुअी मजदूरी ही सेवा कहलायेगी। अिस तरह दुःखके साथ यह मानना ही पड़ेगा कि वर्ण-धर्मका बिलकुल नाश हो गया है। शूद्रको मजदूर बताकर व्याख्या करनेवालेने अुसकी बेअिज्जती की है और हिन्दू-धर्मको नुकसान पहुंचाया है।

लेकिन वर्ण-धर्म हिन्दुओंकी रग-रगमें पैठा हुआ है। बिना समझे अुन्होंने भले ही अुसका संबंध रोटी-बेटी-व्यवहार और छुआछूतके साथ जोड़ दिया हो। वर्ण-धर्मके खयालके बिना हिन्दुओंको चैन नहीं पड़ता। अिसलिअे अुसको फिरसे अुठाया जा सकता है। तपके बिना धर्मको जगाना या अुसका अुद्धार करना नामुमकिन है। तप ही अेक अैसी बड़ी ताकत है, जिसके जरिये धर्म बच सकता है, कायम किया जा सकता है। ज्ञानके बिना तप तप नहीं, बल्कि शरीरको दुःख देना ही है। तप और ज्ञानका मेल तो ब्राह्मण-धर्ममें ही हो सकता है। जो ब्रह्मज्ञान पानेके लिअे मेहनत करे, वह ब्राह्मण होने लायक है। यह कोशिश आज होगी तो किसी दिन हिन्दू-धर्म यानी वर्ण-धर्मका अुद्धार हो जायगा। खुशकिस्मतीसे अैसी कोशिश करनेवाला अेक छोटा-सा वर्ग आज मौजूद है। अिससे मुझे अटल विश्वास है कि हिन्दू-धर्म —

शुद्ध सनातन धर्म — फिर अपना तेज प्रगट करके दुनियाको भलाओका रास्ता दिखायेगा।

मेरा हिन्दू-धर्म सब जगह फैला हुआ है। अुसकी किसी धर्मके साथ दुश्मनी नहीं और न वह किसीका अपमान करता है। सब धर्म अेक-दूसरेसे गूंथे हुअे हैं। सबमें कोओ न कोओ विशेषता पाओ जाती है। पर अेक भी धर्म दूसरेसे चढ़ता हुआ नहीं है। मेरा अैसा मानना है कि सब धर्म अेक-दूसरेकी कमी पूरी करते हैं। अिसलिअे किसी धर्मकी विशेषता दूसरेके खिलाफ नहीं हो सकती, दुनियामें सबके माने हुअे अुसूलोंकी विरोधी नहीं होती। वर्ण-धर्मको अिस नजरसे देखने पर अुसका वही मतलब निकलता है जो मैंने किया है। और अितिहास बताता है कि हिन्दू-धर्मको माननेवाले किसी वक्त अपनी मर्जीसे अुसका पालन करते थे।

अिस वर्ण-धर्मके पालनको फिरसे मुमकिन बनानेके लिअे सबको खुशीसे शूद्रोंका धर्म अख्तियार करनेकी जरूरत है। शूद्र ज्यादातर शरीरकी मेहनतके जरिये सेवा करता है। यह धर्म सबके लिअे आसान है। अिसलिअे यही सब कर सकते हैं। सब अपनेको शूद्र समझें तो अूंच-नीचका भाव जाता रहे।

कोओ कहेगा, 'अगर सब अपनेको शूद्र बतावें तो हरिजन ही क्यों न बतावें?' मैं अिस आग्रहका बिलकुल विरोध न करूंगा। लेकिन धर्ममें वर्ण पांच नहीं हैं, और अछूतपन तो मिट ही रहा है। अिसलिअे मैं 'शूद्र' शब्द काममें लेता हूं। मालवीयजी महाराजकी अध्यक्षतामें हिन्दू जातिके नाम पर बम्बओमें ली गओ प्रतिज्ञा*के बाद जन्मसे अछूतपन माननेकी हिन्दू-धर्ममें गुंजाअिश नहीं रही। अिसलिअे वर्ण-धर्मको फिरसे अूंचा अुठाते समय सबकी गिनती हरिजनोंमें करनेकी बात बेमौका समझी जायगी। हरिजन और दूसरे सब लोग शूद्र बनकर रहें, तो सहजमें सब हरिके जन यानी ओश्वरके भक्त बन जायं।

---

* देखिये पुस्तकके आखिरमें परिशिष्ट – १ में 'हिन्दू समाजकी प्रतिज्ञा', पृष्ठ १५१।

लेकिन सब समझ-बूझकर सेवाका धर्म पालने लगें और अपनेको शूद्र मानने लगें, तो फिर यह तो हो ही नहीं सकता कि कोअी ब्रह्मविद्या न सीखे। अपनी अपनी अिच्छाशक्तिके अनुसार कोअी ब्रह्म-विद्या सीखेगा और सिखायेगा, कोअी प्रजाका पालन करेगा और कोअी रुपया पैदा करेगा। सबका रहन-सहन लगभग अेकसा होगा। यह हालत नहीं रहेगी कि अेक करोड़पति है और दूसरा भिखारी! वैश्यका धन प्रजाका माना जायगा। ये तीनों ताकतें सिर्फ समाजकी सेवामें लगाअी जायेंगी। सब शूद्र ही माने जायंगे, अिसलिअे अूंच-नीचका भाव न होगा। अिसीके साथ वर्ण-धर्म फिर अूंचा अुठेगा।

वर्ण-धर्ममें पीढ़ी-दर-पीढ़ीकी बात जरूर है। अुसके बिना अच्छा बन्दोबस्त हो नहीं सकता। अिसलिअे विद्या पढ़ानेवालेकी संतान अुसी धर्मको पालेगी। सबके सब ब्रह्मज्ञानी नहीं हो सकते। हो जायं तो कोअी हर्ज नहीं। और ब्रह्मज्ञानी होना तो सेवामें कमाल हासिल करना ही है। अुसमें घमण्ड अथवा खुदगरजीकी बू तक नहीं हो सकती। और अैसे ब्रह्मज्ञानियोंकी संख्या अच्छी हो, तो वर्ण-व्यवस्था फिरसे कायम हो सकती है।

अब दो शब्द रोटी-बेटी-व्यवहारके बारेमें।

अूपरका हिस्सा जिसने अच्छी तरह समझ लिया है, अुसके लिअे तो असलमें और कुछ लिखना बाकी रहता ही नहीं। कोअी किसीके साथ रोटी खानेको या चाहे जिसे अपनी लड़की दे डालनेको बंधा नहीं है। अिसलिअे कुदरती तौर पर सब अपने जैसे रीति-रिवाज और आदतवालोंके साथ रोटी-बेटी-व्यवहार रखेंगे। मैंने अभी अेक ही वर्णके बारेमें सोचा है और हरिजन अुसके बाहर नहीं हैं; अिसलिअे अितना कहना काफी है कि अपनी सहूलियतके हिसाबसे सब अपने रिश्ते ढूंढ़ लेंगे और जहां अुनकी आत्मा संतुष्ट होगी वहीं खायेंगे और बैठेंगे। छुआछूत चली जाय तो फिर अिस बारेमें ज्यादा कहने-करनेको कुछ नहीं रह जाता।

आखिरमें बहुत बार कही हुअी बात फिर दुहरा दूं। अिस वर्ण-व्यवस्थाके प्रश्नका अछूतपन मिटानेके साथ सीधा संबंध नहीं है। अछूतपन मिटाना हर हिन्दूका परम धर्म है। अिसीके लिअे हरिजन-सेवक-संघकी हस्ती है। अुसने अपने क्षेत्रकी मर्यादा बांधी है। अुस मर्यादाके बांधनेमें मेरा खास हाथ है।

वर्ण-धर्मके विचार अभी तो मेरे निजी विचार हैं। अुन्हें जो न माने अुसे भी अछूतपन दूर करनेसे न चूकना चाहिये। मैं अुसमें विशेष भाग लेता हूं, अिस खयालसे किसीको भड़कनेकी जरूरत नहीं। वर्ण-व्यवस्थाके मेरे विचारोंको हिन्दू जाति न माने, तो वे मेरे पास ही रह जायेंगे। मैं अुन्हें जबरदस्ती नहीं मनवा सकता, मनवानेकी अिच्छा भी नहीं रखता। ये विचार हिन्दू-धर्मके खिलाफ होंगे, तो मैं खुद हिन्दू जातिमें से निकल जाअूंगा। लेकिन अछूतपन मिटानेकी प्रतिज्ञाका पालन करना तो सब हिन्दुओंका अेकसा धर्म है। मैं अपना अेक भी विचार छिपाकर किसीको धोखा देना नहीं चाहता। वर्ण-व्यवस्थाका सवाल अछूतपनके साथ परोक्ष संबंध रखता है, अिसलिअे मैं समझ सकता हूं कि मेरे साथी और दूसरे अिस बारेमें मेरे विचार जानना चाहते होंगे। अिसी कारण मुझे अपने ये विचार खोलकर बताने पड़ते हैं। मगर अिन विचारोंसे किसीको सोच-विचार या परेशानीमें पड़नेकी जरा भी जरूरत नहीं। धर्मके सवालमें व्यक्ति कुछ भी नहीं हैं। वे तो आते रहेंगे और जाते रहेंगे। धर्म सदा रहने-वाला है। वह चलता ही रहेगा। अुसके बारेमें सदा ही कल्पनाअें होती रही हैं और होती रहेंगी। जिस तरह अीश्वरके गुणोंका पार नहीं, अुसी तरह धर्मकी मर्यादाका भी पार नहीं है। अुसे पूरी तरह किसीने नहीं जाना है। सब जितना जानते हैं अुतना पालन करते रहें, तो धर्मकी गाड़ी आगे चलती रहेगी। अितना समझकर मुझे अलग रखकर ही सब अपने-अपने लिअे धर्मकी खोज करें। अिसकी खोज करनेकी शर्तें दुनिया भरमें जाहिर हैं। अुन शर्तोंका पालन करनेवाले ही धर्मको किसी हद तक पहचानेंगे। सारे ज्ञानके पीछे अुसे पानेके नियम होते हैं। अुन्हींमें से परिश्रम अेक है। धर्मकी खोजके लिअे सबसे जरूरी

परिश्रम है। और असलिअे अुसकी खोजकी शुरुआतमें ही अनुभवियोंने यम-नियमोंका पालन बताया है।

हरिजनबंधु, १९–३–'३३

११

आज तो अेक ही वर्ण है

['पत्रव्यवहार'में से अेक सवाल]

"अेक साथीने पूछा, आप कहते हैं कि आप वर्ण-धर्मको रखना चाहते हैं। फिर भी आप यह कैसे कहते हैं कि हम सब शूद्र हैं और अेक ही वर्णके हैं? असके सिवा, हम तो आज शूद्र कहलानेके लायक भी नहीं हैं। असका क्या होगा?"

ज० — आज अगर हमें वर्णके अनुसार सब हिन्दुओंके हिस्से बनाने ही हों, तो अकेले शूद्र वर्णके सिवा दूसरा कोअी भी वर्ण नहीं है। और अस सच्ची हालतको मान लेनेमें ही हिन्दू जातिका भला है। अितना मान लेनेसे अूंच-नीच वर्णोंके भेद अपने-आप मिट जायंगे। अैसा नहीं है कि असके बाद कोअी ब्रह्मविद्या या दूसरी विद्या हासिल करनेकी कोशिश नहीं करेगा। मगर असका मतलब अितना तो है ही कि सब खुद मेहनत करके, हाथ-पैर हिलाकर रोटी पैदा करेंगे और अपनी दूसरी शक्तियां आम लोगोंकी भलाअीके काममें लगावेंगे। यह सच है कि अस तरहका वर्ण-धर्म अमलमें आया हुआ हमने देखा नहीं; पर असमें मुझे कोअी शक नहीं कि हिन्दू-धर्मके सतयुगमें अस वर्ण-धर्मका पालन हुआ होगा।

हरिजनबंधु, २६–३–'३३

१२

वर्ण-व्यवस्थाका रहस्य

वर्ण-व्यवस्थाका मेरा लेख पढ़कर अेक विद्यार्थी लिखता है:

"क्या आप जन्मसे वर्णको मानते हैं? क्या आपका यह कहना है कि ब्राह्मणके घर पैदा हुअे मनुष्यका काम ब्राह्मणका ही होगा और अिसी तरह भंगीके यहां जन्मा हुआ आदमी भंगीका ही काम करेगा? अिसका मतलब तो यह हुआ कि जन्मका भंगी वेद और शास्त्र नहीं पढ़ सकता और वेद-शास्त्रका पण्डित होकर भी वह ब्राह्मणका दर्जा नहीं पा सकता। आपके कहनेके अनुसार तो हरअेक प्राणी जन्मसे ही अैसा बंधन लेकर पैदा होता है कि अुसी बंधनमें रहकर अपना काम करके अुसे सन्तुष्ट रहना चाहिये और अुसीमें अुसे मोक्ष पानेकी कोशिश करनी चाहिये। अिस सिद्धान्तका पोषण करना व्यक्तिवादकी हत्या करनेके बराबर है और व्यक्तिकी काम करनेकी और विचार करनेकी आजादीको छीन लेना है।

"मानवीय दुर्बलताओंसे भरे अिस संसारमें जान-बूझकर वर्ण-विभाग रखनेसे समय पाकर जात-पांतकी बुराअियां जरूर पैदा हो जायेंगी। आजकलकी पढ़ाअीके हिसाबसे तो हर शख्सको काम करने और सोचनेकी आजादी होनी चाहिये। व्यक्तिकी आजादीका यही मूल मंत्र है। हर आदमीको दुनियामें सेवा या कर्तव्यके खातिर अपनी मर्जीके मुताबिक कोअी भी अच्छा काम करने देनेमें समाज, धर्म या किसी व्यक्तिको कोअी बाधा क्यों होनी चाहिये? हर व्यक्तिका — फिर अुसका जन्म कहीं भी क्यों न हुआ हो — जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह ज्ञान, शक्ति, धन और सेवामें से अेकको या सबको साधे। जीवनकी पूर्णताके लिअे चारों जरूरी हैं। अिस जीवनकी पूर्णताको समझने

और अुसके अनुसार फर्ज अदा करनेमें ही धर्मकी सच्ची सेवा है। आप अिस बारेमें अपने विचार ज्यादा साफ करें तो अच्छा हो।"

हां, मैं जन्मसे होनेवाले वर्णके बंटवारेमें मानता हूं। अगर अैसा न होता तो वर्ण-व्यवस्थाका कुछ भी अर्थ नहीं होता; वर्ण-व्यवस्थासे जरा भी फायदा न होता और वह निरा शब्दजाल रह जाती।

वर्णका बंटवारा कोअी मनुष्यकी बनाअी हुअी योजना नहीं है। अिसकी जड़ तो कुदरतके कहिये या अीश्वरके कानूनमें है। कानूनका पालन करना न करना मनुष्यके हाथमें है। अिसलिअे मनुष्यके व्यक्तित्वको कोअी हानि नहीं होती। आग कहती है कि मुझे छुओगे तो जलोगे। हम आगकी बात न सुनें और व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर अमल करनेके लिअे आगको छुअें, तो हमें जरूर जलना पड़ेगा। अिसी तरह वर्ण-व्यवस्थाके नियमकी बात है। अृषि-मुनियोंने तपस्या करके अपने ध्यानमें देखा कि वर्णका बंटवारा समाजकी अुन्नतिके लिअे जरूरी है। और अिसीलिअे अुन्होंने समाजके हिस्से किये। अिसका अमल करना न करना हमारे हाथकी बात है। न करें तो कोअी बांधकर मारनेवाला नहीं है। पर कुदरत सजा देगी तो अुसे कौन रोक सकेगा? या अुसे सजा कहें ही क्यों? वर्ण-विभागके नियमोंको न माननेका जो कुदरती परिणाम होगा अुसे कौन रोक सकता है? अिस तरह वर्ण-विभागसे व्यक्तिकी हानि हो ही नहीं सकती।

पर जन्मसिद्ध वर्ण कैसे? यह कोअी मेरी जेबमें से निकाली हुअी बात नहीं है। वर्ण-विभागकी जड़में ही जन्म है। ब्राह्मणके नाममें ब्राह्मणपन है और वह अपनी संतानको ब्राह्मणपनके लिअे तैयार करेगा। अिसी तरह शूद्रकी बात है। शूद्र अपने लड़केको शूद्रपनके लिअे तैयार करेगा। अिसका मतलब यह नहीं कि शूद्र ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। वर्ण-व्यवस्थाका संबंध आजीविकाके साथ है। जिस वर्णमें जो पैदा हुआ है, वह अुसी वर्णके धंधे पर गुजर करेगा। हर वर्ण दूसरे वर्णकी जानकारी ले तो अिसमें कोअी हर्ज नहीं। अपनी अपनी

तरक्की और आजादीकी रक्षाके लिअे सबमें चारों वर्णोंके मामूली गुण होने चाहिये। लेकिन हर आदमीमें अपने वर्णका गुण विशेष रूपमें मालूम पड़ना चाहिये।

वर्ण-व्यवस्थामें दुनियावी लालचको मर्यादामें रखनेकी बात है, ताकि आत्माके विकासके लिअे अधिक गुंजाअिश रह सके। दुनियावी चीजें और दुनियावी सुख क्षणस्थायी हैं। मनुष्य अिन्हींको पानेमें फंसा रहे और अिन्हींको अपना ध्येय बना ले, तो आत्माका विचार नहीं कर सकता। अिसमें पुरुषार्थको किसी भी तरह आंच नहीं आती। मनुष्यको जब गुजारेके साधनकी तलाश नहीं करनी पड़ती, आजीविकाका साधन तैयार ही होता है, तब अुसकी सारी कोशिश सिर्फ आध्यात्मिक खोजके लिअे होती है। मुझे अैसा विश्वास हो गया है कि हिन्दू जातिने वर्ण-व्यवस्थाकी खोज करके अेक बड़ी भारी आध्यात्मिक खोज की है और आध्यात्मिक विकासका सामान तैयार किया है। समयके फेरसे हम अिस चीजको भूल गये, और वर्ण-व्यवस्था अव्यवस्थित हो गअी, वह छुआछूतमें खतम हो गअी, और रोटी-बेटी-व्यवहारमें ही रह गअी। अुसमें से वर्णका संकर शुरू हुआ और हमारा पतन हुआ। हरअेक दूसरे वर्णका धंधा करनेकी कोशिश करने लगा। ब्राह्मण लालची हो गये और अुन्होंने अपना ब्राह्मणका धर्म छोड़ दिया। 'दरियामें लगी आग बुझा कौन सकेगा?' नमक जब खारापन छोड़ दे, तो फिर खारापन रहेगा कहां? अिसीसे आज हिन्दू-धर्मकी दुर्गति हुअी है।

हरिजनबंधु, ९–४–'३३

१३

पांच सवाल

वर्ण-धर्मके मेरे लेखके बारेमें अेक सज्जनने पांच सवाल भेजे हैं:

" १. गुजारेके लिअे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्या काम करें?

२. सेवाके लिअे चारों वर्ण क्या क्या काम करें?

३. सेवाका काम और गुजारेका काम अेक ही हो या अलग अलग हो?

४. आपने लिखा है कि अिस वर्ण-धर्मका पालन फिरसे मुमकिन बनानेके लिअे सबको अपनी खुशीसे शूद्र बन जाना चाहिये, शूद्रका धर्म अपना लेना चाहिये। अगर शूद्रके अलावा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रका धर्म अपना लें, तो क्या अुनको अपना धर्म छोड़कर दूसरेका धर्म अपनानेका दोष नहीं लगेगा?

५. आपने लिखा है कि खुशकिस्मतीसे आज ब्रह्मको जाननेकी कोशिश करनेवाला अेक छोटा-सा वर्ग मौजूद है, जिसके जरिये शुद्ध सनातन धर्म फिरसे अपना तेज प्रगट करके दुनियाको भलाअीका रास्ता बतायेगा। वह वर्ग कौनसा है?"

किसीको सवाल पूछनेसे मैं रोकना नहीं चाहता, पर अितना जरूर कहना चाहता हूं कि कअी सवाल असली लेख पढ़नेसे हल हो जाते हैं। जिस लेखमें अुस विषयके अंदर आनेवाले सवालोंका जवाब न मिले, वह लेख निकम्मा है। नीति-सम्बन्धी लेखोंको अेक ही दफा पढ़कर नहीं छोड़ देना चाहिये। अैसे लेखोंको बार बार पढ़नेसे ही अुनके भीतरके सवाल अपने-आप हल हो जाते हैं। पूछनेवाले भाअीसे मेरी प्रार्थना है कि वह वर्णाश्रम पर मेरा लेख पढ़ जायं, ताकि अुन्हें पता चले कि यहां मैं जो कुछ लिखूंगा, वह सब मेरे लेखमें

मौजूद है। मेरी यह सूचना सबके लिअे है। हममें पढ़नेके बाद मनन करनेकी आदत जाती रही, असलिअे हम पराधीन-जैसे बन गये हैं; और हर बातमें दूसरेकी राय जानना चाहते हैं। किसी भी आदमीके बारेमें यह हालत पैदा होना दयाजनक बात है। बड़े अुसूलमें से छोटा अुसूल निकालनेकी शक्ति हममें आ जानी चाहिये। थोड़ेसे अभ्याससे यह शक्ति मिल जाती है।

अब सवालोंके जवाब :

१. ब्राह्मण ब्रह्मज्ञान देगा, क्षत्रिय रक्षा करेगा, वैश्य व्यापार वगैरासे धन कमायेगा, शूद्र सेवा करेगा और सब अपना अपना कर्तव्य करके अपनी रोजी कमायेंगे, लेकिन गुजारेसे ज्यादा नहीं कमायेंगे।

२. वर्ण धर्म है, अधिकार नहीं। असलिअे वर्ण सिर्फ सेवाके लिअे ही हो सकता है, स्वार्थके लिअे नहीं हो सकता। अिस तरह न कोअी अूंचा है, न कोअी नीचा। जो ज्ञानी अपनेको अूंचा मानता है, वह मूर्खसे भी बुरा है। वह वर्णसे गिर जाता है। यहां यह भी समझना जरूरी है कि वर्ण-धर्ममें कोअी अैसी बात नहीं कि शूद्र ज्ञान न हासिल करे या रक्षाका काम न करे। हां, शूद्र ज्ञान देकर या रक्षाका काम करके रोजी न कमाये। क्षत्रिय सेवा न करे, अैसी बात भी नहीं; लेकिन सेवासे रोटी न कमाये। अिस सीधे सहज धर्मका सब पालन करें, तो जो झगड़े आज होते हैं, जो रस्साकशी अेक-दूसरेके साथ होती है, धन अिकट्ठा करनेके लिअे जो होड़ चलती है, जो झूठ चलता है, जो कलह और लड़ाअी मचती है, वह सब मिट जाय। अिस नीतिका पालन सारी दुनिया करे या न करे, सब हिन्दू करें या न करें, लेकिन जितने करेंगे अुतना संसारका लाभ होगा। मेरा यह विश्वास बढ़ता जाता है कि वर्ण-धर्मसे ही संसारका अुद्धार होगा। वर्ण-धर्मका सच्चा अर्थ सेवाधर्म है। जो कुछ किया जाय, वह सेवा-भावसे किया जाय। सेवामें सौदेकी गुंजाअिश नहीं है।

अब रही बात शरीर-श्रमकी। जहां तक मैंने गीताको समझा है, मुझे लगता है कि गीतामें यज्ञके कअी अर्थ किये गये हैं। अुनमें

शरीर-श्रम भी आ जाता है। समाजकी भलाअी या लोकसंग्रहके लिअे यज्ञके तौर पर शरीरसे मेहनत करना भी सब वर्णोंका धर्म है। अिस यज्ञसे कोअी नहीं बच सकता, क्योंकि मेहनतके बिना शरीरका निभाव भी नहीं हो सकता। जो यह श्रमरूपी यज्ञ नहीं करता वह चोरी करता है। यह कहना कि मेहनत शूद्रका ही काम है, धर्मको न जानना है। परिचर्याका अर्थ शरीर-श्रम नहीं। जो आदमी अपने बरतन मांजता है, वह मेहनत करता है, परिचर्या नहीं करता। जो आदमी जीविकाके लिअे दरवाजे पर बैठकर चौकीदारी करता है, वह मेहनत नहीं करता, परिचर्या जरूर करता है।

३. तीसरे सवालका जवाब देनेकी अब आवश्यकता नहीं रहती।

४. यह सवाल करते वक्त पूछनेवाला भूल गया है कि मेरा कहना यह है कि आज वर्ण-धर्म करीब करीब मिट गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंने कभीसे अपना वर्ण छोड़ दिया है। वे अपना धर्म छोड़कर अधिकारको ले बैठे हैं। दोष तो हो चुका है। लेकिन शूद्रोंका धर्म अपनाकर वर्णसे गिरे हुअे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अुस दोषसे मुक्त होनेकी शुरुआत कर सकते हैं। शूद्रको हलका मानना अिनका धर्म कभी था ही नहीं।

५. जो लोग भागवत धर्म यानी भक्तिमार्गका दिलसे अमल करते हैं, अीश्वरको खुश रखनेके खातिर सिर्फ गुजारा लेकर लोगोंकी सेवा करते हैं, वे अपने अमलसे ब्रह्मज्ञान देते हैं। अिनमें विद्वान भी हैं, और अविद्वान भी। ये अपना काम किसीको बतानेके लिअे नहीं करते। अिन सबके नाम मैं नहीं जानता। मेरा यह विश्वास है कि अैसे लोग मौजूद हैं। हां, अिनकी तादाद थोड़ी है।

हरिजनबंधु, १६–४–'३३

१४

विरोधाभास

अेक भाअी मेरे लेखोंका ध्यानसे अध्ययन करते हैं। मैंने हालमें अेक वर्णके दूसरे वर्णके साथके रोटी-बेटी-व्यवहारके बारेमें जो कुछ लिखा है, अुसके साथ मेरे कअी बरस पहलेके अिस विषयके लेखोंका मेल बैठानेमें अुन्हें मुश्किल पड़ती है।

१९२१ के अक्तूबरमें मैंने हिन्दू-धर्मके बारेमें अेक लेख लिखा था। अुसमें से अिन भाअीने जो अुद्धरण दिया है, अुसका अिन भाअीका निकाला हुआ हिस्सा छोड़कर बाकी ज्योंका त्यों यहां देता हूं:

"अिस तरह हालांकि वर्णाश्रम-धर्मको अेक वर्णके साथ दूसरे वर्णके रोटी-बेटी-व्यवहारसे धक्का नहीं लगता, फिर भी हिन्दू-धर्म अलग अलग वर्णोंके बीच रोटी-बेटी-व्यवहारको आग्रहके साथ नापसन्द करता है। हिन्दू-धर्म संयमकी आखिरी हद तक पहुंच सका है। यह धर्म आत्माके मोक्षके लिअे देहका दमन करनेको कहता है। अेक मर्यादित वर्गमें से अपने घरके लिअे लड़की पसन्द करनेकी विधि भी बड़े संयमके सिवा और क्या जाहिर करती है? . . . आत्माके शीघ्र विकासके लिअे अेक वर्णके साथ दूसरेके रोटी-बेटी-व्यवहारकी मनाही जरूरी चीज है।"

अुसके बाद पिछले चार नवम्बरको अखबारमें भेजे हुअे मेरे लेखमें से यह भाअी जो अुद्धरण देते हैं, वह भी अुनके निकाले हुअे हिस्सेको छोड़कर नीचे देता हूं:

"अेक वर्णके साथ दूसरे वर्णके रोटी-बेटी-व्यवहारकी मनाही धर्मका अंग नहीं, वह समाजका अेक पुराना रिवाज है। शायद जब हिन्दू-धर्मकी गिरी हुअी हालत होगी, तब वह घुस गया होगा। . . . आज ये दोनों मनाहियां हिन्दू समाजको कमजोर बना रही हैं; और अिन पर जोर देनेसे आम लोगोंका मन जीवन-विकासके लिअे जरूरी

मूल तत्त्वों पर डटे रहनेके बजाय अुलटे रास्ते चल पड़ा है।... खान-पान और ब्याह-शादीकी पाबन्दियां हिन्दू समाजकी अुन्नतिको रोकती हैं।"

अिन अुद्धरणोंको निष्पक्ष होकर पढ़नेसे मुझे अिन दोनोंके बीच कोअी भी विरोध नहीं जान पड़ता; खासकर ये लेख पूरे पढ़े जायं, तो विरोधकी झलक भी न दिखाअी दे। १९२१ के लेखमें मैंने हिन्दू-धर्मकी छोटीसे छोटी रूपरेखा दी थी। पिछले ४ नवम्बरको मुझे अनगिनत जात-पांतों और अुनकी पाबन्दियों पर विचार करना था। आश्रममें जैसा रहन-सहन आज है, वैसा ही १९२१ में भी था। अिस तरह मेरे अमलमें तो कोअी फर्क पड़ा ही नहीं। अब भी मैं मानता हूं कि रोटी-बेटी-व्यवहार पर खुशीसे लगाअी हुअी रोकमें संयम है। १९२१ का लेख आज लिखूं तो शायद अेक शब्द बदलूं। मनाही शब्दके बदले अिसी लेखमें कुछ लकीरोंके पहले काममें लाये हुअे शब्द फिर दुहराअूं और कहूं कि 'आत्माके शीघ्र विकासके लिअे वर्ण-वर्णके बीच रोटी-बेटी-व्यवहारकी खुशीसे की हुअी मनाही जरूरी चीज है।'

४ नवम्बरके लेखमें मैंने जो कुछ लिखा है, अुसके होते हुअे भी मैं कहूंगा कि अेक वर्णका दूसरे वर्णके साथ रोटी-बेटी-व्यवहार करना भाअीचारेकी भावना बढ़ाने या अछूतपन मिटानेके लिअे जरा भी जरूरी नहीं। पर अिसके साथ ही, अिसमें भी शक नहीं कि बाहरसे दूसरेकी लगाअी हुअी पाबन्दी समाजके विकासको रोकती है। और अिन पाबन्दियोंका सम्बन्ध वर्ण-धर्मके साथ मानना आत्माकी मुक्तिमें रुकावट डालता है। अैसा हो तो वर्ण धर्मके लिअे बोझ हो जाय।

पर अितना कहनेके बाद मेरे लेखोंका अभ्यास करनेवाले अिस मेहनती विद्यार्थीसे और अिसी तरह अुनमें रस लेनेवाले दूसरे लोगोंसे मैं कहना चाहता हूं कि मुझे हमेशा अेक ही रूपमें दीखनेकी परवाह नहीं है। सचाअीकी खोजमें मैंने बहुतसे विचार छोड़े हैं और बहुतसी नअी चीजें सीखी हैं। अुम्रसे मैं भले ही बूढ़ा हुआ हूं, पर मुझे अैसा नहीं लगता कि मेरा भीतरी विकास रुका है या देहके छूटने पर

भी वह रुक जायगा। मुझे अेक ही बातकी चिन्ता है और वह है हर वक्त सत्यनारायणकी वाणी पर अमल करनेकी तत्परता। अिसलिअे किसीको मेरे दो लेखोंमें विरोध जैसा जान पड़े और मेरी समझदारी पर भरोसा हो, तो अेक ही विषय पर मेरे दो लेखोंमें से वह पिछले लेखको प्रमाणभूत माने।

हरिजनबन्धु, १६-४-'३३

१५

भावी वर्ण-धर्म

'अेक सनातनी' लिखते हैं :

"'हरिजनबन्धु' के पिछले अंकमें अेक हरिजनको ध्यानमें रखकर आपने लिखा है : 'मेरे खयालमें वर्ण-धर्म मिट गया है और अुस धर्मका अुद्धार आपको वर्णके बाहर रखकर नहीं हो सकता। लेकिन मेरे जीते-जी अगर वर्ण-धर्मका अुद्धार होना है, तो जो आपका वर्ण माना जायगा, वही मेरा वर्ण समझना; क्योंकि मैं अपनेको खुशीसे बना हुआ हरिजन मानता हूं।'

"यह तो साफ दीखता है कि वर्ण-धर्म मिट गया है। यह बात भी गले अुतरती है कि रोटी-बेटी-व्यवहारकी मनाहीसे और छुआछूतकी हठ रखनेसे वर्ण-धर्म बचता नहीं और टिकता भी नहीं। लेकिन अिस बारेमें मनमें शंका रहा करती है कि अब सच्चे वर्ण-धर्मका फिरसे अुद्धार होगा या नहीं। जब फिर अुद्धार होगा, तब करोड़ों हिन्दुओंमें से हरअेकका वर्ण कौन तय करेगा? किन तत्त्वों पर यह तय होगा? और यह बात किन तत्त्वों पर और किसके हाथों तय होगी कि सैकड़ों जातियों और हजारों धन्धोंमें से कोअी अेक जाति या कोअी अेक धन्धा किस अेक वर्णके हिस्सेमें जाय? क्या आपको लगता है कि

वर्ण-व्यवस्था फिरसे चालू करने जैसी शक्ति और संगठन अब किसी भी समाजमें पैदा होंगे? या आप समझते हैं कि रूस जैसी हुकूमत अिसे तय कर देगी? कृपा करके अिन सवालोंका विस्तारसे जवाब दीजिये, ताकि मेरे जैसा सनातनी आपके विचार समझ सके।"

अिन सवालोंका सीधा जवाब देना कठिन है। कोअी तीनों कालकी बात जाननेवाला ही दे सकता है। मेरे लिअे वर्तमानकी जानकारी और अुसके अनुसार अमल करना काफी है। 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब, पलमें परलय होयगी, बहुरि करैगो कब?' यह नास्तिक-आस्तिक दोनों दिलसे गा सकते हैं। नास्तिकका लाभ 'खाओ, पिओ और मौज अुड़ाओ' में खतम हो जाता है। आस्तिकका लाभ भगवानकी भक्तिमें यानी मिले हुअे फर्जको दिलोजानसे अदा करनेमें खतम होता है। मैं अपनेको आस्तिक मानता हूं और आजका लाभ लेनेमें ही सफलता समझता हूं। आज जो करूंगा वह कल भरूंगा, यानी यह यकीन है कि भविष्य वैसा ही होगा। अिसलिअे मुझे अिसकी फिक्र नहीं होती कि वर्ण-धर्मका आगे क्या होगा। अिसकी चिन्ता न करनेकी सलाह मैं 'अेक सनातनी' को भी देता हूं। जो लोग मेरे जैसे वर्ण-धर्मको मानते हैं और मेरी व्याख्याको स्वीकारते हैं, वे अपना रहन-सहन अुसी तरहका बनायें तो समझा जायगा कि अुन्होंने वर्ण-सम्बन्धी अपने धर्मका पालन किया।

फिर, अेक और बात भी ध्यानमें रखने लायक है। किसी भी धर्मके मूल सिद्धान्त व्यापक बनने लायक होने चाहिये। जिनमें अैसा गुण न हो, वे सिद्धान्तके तौर पर नहीं माने जा सकते। अगर वर्ण-धर्म अैसा सिद्धान्त न हो, तो अुसकी अुत्पत्ति खास समय, जगह और संयोगोंमें होनी चाहिये, और अिनमें से अेकके बदलनेसे भी वह व्यवस्था बदल जायगी। वर्ण-व्यवस्था अैसी क्षणजीवी हो, तो अुसके रहने या न रहनेके बारेमें कोअी विचार करना जरूरी न रहे। लेकिन मेरी व्याख्याके वर्ण-धर्मको मैं सब जगह फैला हुआ सिद्धान्त मानता हूं।

अुसके अमल पर मनुष्य-समाजकी हस्तीका दारमदार है। अगर मेरे विचारमें कुछ भी सार होगा, तो आगे चलकर वर्ण-धर्म फैलकर रहेगा; फिर भले ही वह किसी भी नामसे पहचाना जाय। वर्ण-धर्मका मतलब यही है कि हर मनुष्य अपने बापदादेके गुजरके साधनसे सन्तुष्ट रहे। अिस योजनाकी जड़में अहिंसा है, अीश्वरके कानूनकी जानकारी है, शुद्ध अर्थशास्त्र है, मानवता है। अिस वर्ण-धर्म पर अमल न हुआ, तो जैसा कभी नहीं हुआ वैसा गृह-युद्ध होनेवाला है। जैसे जैसे करोड़ोंमें जागृति आयेगी, वैसे वैसे सब धनवान बनना चाहेंगे, सब बड़े बनना चाहेंगे, नीचे माने जानेवाले धन्धे कोअी न करना चाहेंगे और अूंच-नीचका खयाल ज्यादा ज्यादा फैलेगा। मुझे तो लगता है कि अिसका नतीजा आपसकी मारकाटके सिवा और कुछ न होगा।

लेकिन मनुष्यके स्वभावमें ही अपना बचाव करनेका गुण निहित है, अिसलिअे मनुष्य वर्ण-धर्मका आसरा लेकर बच जायगा। अपना अपना खानदानी धन्धा करके, किसी भी धन्धेको अूंचा या नीचा माने बिना, सब अपना जीवन बितायेंगे। अैसा होने पर कोअी ब्राह्मण, क्षत्रिय वगैरा नामसे न पहचाना जाकर किसी दूसरे नामसे जाना जाय तो अुसकी चिन्ता न होनी चाहिये। वर्ण चारके बजाय दो भी हो सकते हैं और चारसे ज्यादा भी हो सकते हैं। अितना साफ है कि वर्णके बड़े कानून पर चलकर हम पूंजीवाद और मजदूरवाद वगैराके झगड़ेसे बच जाते हैं। अैसी व्यवस्थामें अेक किनारे खूब लालच, खूब दौलत और खूब घमण्ड न होगा; और दूसरे किनारे लाचारी, कंगाली और दीनता न होगी। सब कोअी मिलकर रहेंगे और कोअी किसीको अूंचा या नीचा न मानेगा।

अितना लिखनेके बाद अपनी कल्पनाके घोड़े पर बैठकर थोड़ी सैर करूं। अगर कोअी वर्ण-व्यवस्थाकी रचनाका काम मुझे सौंपे और मैं हिन्दुस्तानमें रहूं, तो ब्राह्मणोंसे शुरुआत करूं। वे सचमुच अनुभव-ज्ञान और अुसकी बुनियाद पर खड़े होनेवाले आचारके रक्षक होंगे और अिसलिअे दूसरे वर्णोंकी अुनसे पट जायगी। कारण, अुनका

अनुभव स्वयंसिद्ध होनेसे सब लोग अपने-आप अुनके पीछे चलेंगे और अुनमें परम्परागत होशियारी भी होगी। यह सवाल नहीं रहेगा कि ब्राह्मण कौन है। आजके हरिजन कहलानेवालेको सब ब्राह्मणके तौर पर मानेंगे और ब्राह्मण कहलानेवाला शूद्र कहलानेमें नहीं झिझकेगा। मैंने जिस जमानेकी कल्पना की है, अुसमें कोअी अड़चन पैदा न होगी; क्योंकि अुस जमानेमें अूंच-नीचकी भावना जड़से मिट गअी होगी और सब अपने अपने घरका धन्धा करते होंगे और अिस तरह सब अपनी अपनी जगह जम गये होंगे।

कल्पनाके घोड़े पर की हुअी सैरका लम्बा-चौड़ा बयान करनेमें बहुत सार नहीं होता। अिसलिअे अितना बयान करके खतम करता हूं, जिससे रास्ता दीख जाय। लेकिन मेरे अिस लेखसे अितना सार तो निकलना चाहिये कि वर्ण-धर्मको अहिंसक माना है, अिसलिअे अुसमें राजदण्डकी गुंजाअिश तो है ही नहीं। मनुष्यके स्वभावमें वर्ण-धर्म होगा, तो अुसीसे अुसका अुद्धार हो जायगा। अगर वह मनुष्य-स्वभावके खिलाफ हो, तो ठीक है कि वह आज मिट गया है। यहां मनुष्यसे मतलब पशु-जातिका अेक विशेष प्राणी नहीं, बल्कि वह जिसमें से पशुत्व दिन-दिन कम होता जा रहा है और जो मूर्छासे निकलकर आत्माको पहचाननेवाला बन गया है। मनुष्य आत्माको पहचाननेके लिअे बनाया गया है और आत्माके रूपमें अेक है। अिसलिअे वह किसी न किसी दिन अूंच-नीचके झगड़ेमें से निकलकर अेकता बढ़ाने-वाली वर्ण-व्यवस्थाको अपने-आप अपना लेगा।

हरिजनबन्धु, १-१०-'३३

१६

सच्चा ब्राह्मणत्व

अेक बंगाली प्रोफेसरने लम्बा पत्र लिखा है। अुसमें से नीचेका हिस्सा देता हूं :

"आपको यह जानकर दुःख होगा कि देशके कितने ही भागोंमें अछूतपन मिटानेकी हलचल रास्तेसे हट गअी है और अुसने सिर्फ ब्राह्मणत्व और अुसके आदर्शोंके खिलाफ नीच और हिंसक प्रचारकी सूरत अख्तियार कर ली है। ब्राह्मण समाजको लोगोंकी आंखोंमें गिरानेके लिअे आधा व पूरा झूठ जानबूझकर फैलाया जाता है और लोगोंको भरमाया जाता है। क्या अछूतपनकी प्रथा अकेले ब्राह्मणोंमें ही है? क्या दूसरे वर्णोंके हिन्दू भी अुतने ही गुनहगार नहीं? मान लीजिये कि शास्त्र ब्राह्मणोंके बनाये हुअे हैं; पर अैसा प्रमाण कहां है कि आज जिस तरहका निर्दय अछूतपन हिन्दुस्तानके कुछ हिस्सोंमें पाला जाता है, अुसके लिअे शास्त्रकी आज्ञा है? . . . क्या यह सच नहीं है कि अछूतपन दूर करनेकी आजकी हलचलको सफल बनानेमें ब्राह्मणोंने बहुत बड़ा हिस्सा लिया है? क्या यह भी सच नहीं कि बड़ी धारासभा या केन्द्रीय असेम्बलीके जिन मेम्बरोंने हरिजन-मन्दिर-प्रवेश बिलमें बाधा डाली, अुनमें से ज्यादातर अब्राह्मण थे? फिर किस लिअे ब्राह्मणों पर टूट पड़ना चाहिये? वे तो अछूतपनके शापसे पैदा होनेवाली हालतकी गम्भीरताको और लोगोंसे ज्यादा समझते हैं।"

देशमें अछूतपन दूर करनेका आन्दोलन शुरू हुआ, अुसके बहुत पहलेसे ब्राह्मणोंके खिलाफ हलचल शुरू हो गअी थी, और कअी सालसे चल रही है। अिस आन्दोलनको चलानेवाले अखबारोंके सिवा और कहीं मैंने ब्राह्मणत्वके खिलाफ हिंसक या अहिंसक हमले हुअे देखे नहीं। हरिजनसेवक-संघका अैसे आक्षेपोंके साथ कोअी सरोकार नहीं है।

यह बिलकुल सच है, जैसा कि लेखकने कहा है, कि अगर मुझे पता चले कि अछूतपन मिटानेकी हलचल अपने रास्तेसे हटकर ब्राह्मणत्वके विरुद्ध हीन और हिंसक आक्षेपकी सूरत अख्तियार कर चुकी है तो मुझे दुःख होगा। अिसलिअे मैंने अिन लेखकको लिखा है कि अुन्होंने जो गंभीर बात कही है, अुसके समर्थनमें अुनके पास जो भी सबूत हों, वे मेरे पास भेज दें। मगर अिस पत्रके सिलसिलेमें मैं ब्राह्मणत्व और ब्राह्मणोंके बारेमें अपनी राय दोहरा देता हूं।

मैं मानता हूं कि ब्राह्मणत्वका मतलब है ब्रह्मका दर्शन करानेवाला शुद्ध ज्ञान। मेरी यह राय न हो तो मैं खुद हिन्दू नाम छोड़ दूं। मगर मनुष्य-समाजके दूसरे लोगोंके साथ साथ सब ब्राह्मणोंमें भी सच्चा ब्राह्मणत्व नहीं रहा। फिर भी मुझे मानना पड़ता है कि जगतके अिन तमाम वर्गोंमें ज्ञानकी यानी सचाअीकी खोजमें सब कुछ कुर्बान करनेवालोंमें ज्यादासे ज्यादा ब्राह्मण ही मिलेंगे। हिन्दू-धर्मके सिवा मैंने अेक भी दूसरा धर्म नहीं देखा जिसमें सिर्फ ब्रह्मज्ञानके खातिर खुशीसे फकीर बनकर रहनेवाला अेक अलग वर्ग पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आया हो। ब्राह्मणोंने अपने लिअे जो आदर्श ठहराया था, अुसे शोभा देनेवाला जीवन वे कायम न रख सके। अिसमें अुनका कसूर नहीं। अुनकी कमीसे अितना ही साबित होता है कि वे और मनुष्योंके जैसे ही पतनके लायक थे। अिसीसे हम धर्मशास्त्रके नामसे पहचाने जानेवाले ग्रंथोंमें सड़ांध घुसी हुअी देखते हैं। अिसीसे हम यह दुःखदायी दृश्य देखते हैं कि जिन ब्राह्मणोंने अपने लिअे अत्यन्त निःस्वार्थ नियम बनाये हैं, अुन्हींने अपनी संतानके लिअे शास्त्रकी स्वार्थी आज्ञाअें रची हैं। लेकिन सड़ांधके खिलाफ और स्वार्थसे जोड़ी हुअी बादकी बातोंके खिलाफ बलवा करनेवाले भी ब्राह्मण ही थे। अुन्हींने बार बार अपने और समाजके पाप धो डालनेकी कोशिशें की हैं। मैं मंजूर करता हूं कि मेरे मनमें ब्राह्मणत्वके लिअे बड़ेसे बड़ा पूज्य भाव है और ब्राह्मणोंके लिअे अटल मान है। और यह देखकर मुझे दुःख होता है कि ब्राह्मण कहलानेवाले लोग अिस सुधारके आन्दोलनके खिलाफ धांधली मचा रहे हैं और अपनी शक्तिको विरोधी पक्षमें लगा रहे हैं। फिर भी अेक

बातसे मुझे तसल्ली होती है और हरअेक निष्पक्ष हिन्दूको तसल्ली होगी कि सुधारकी हलचलके नेताओंमें भी अैसे लोग हैं, जो जन्मसे ब्राह्मण होकर भी जन्मका जरा घमण्ड नहीं करते। अछूतपन मिटानेका काम करनेवाले सब सेवकोंकी गिनती की जाय, तो यह जान पड़ेगा कि किसी भी तरहका मेहनताना लिये बिना या सिर्फ पेट पुरता लेकर अपनी सारी ताकत अिस हलचलमें लगा देनेवाले सेवकोंमें बड़ा भाग ब्राह्मणोंका ही है।

लेकिन मैं मानता हूं कि ब्राह्मणोंकी अवनति हुअी है। अैसा न होता और वे अपने आदर्श तक पहुंचे होते, तो हिन्दू-धर्मकी आज जो अवनति हुअी है वह न हुअी होती। यह कहना कि ब्राह्मणोंने शुद्ध जीवन रखा है, फिर भी हिन्दू-धर्म आज अिस हालतमें आ पड़ा है, परस्पर विरोधी बात समझी जायगी। अैसा हो ही नहीं सकता, क्योंकि ब्राह्मणोंने खुद ही हमें सिखाया है कि वे ब्रह्मज्ञानके सच्चे रक्षक हैं। और जहां ब्रह्मज्ञान है वहां डर नहीं, गरीबी नहीं, कंगाली नहीं, अूंच-नीचका भाव नहीं; वहां लालच, घमण्ड, फूट और लूट जैसी चीजें नहीं। ब्राह्मणत्वकी अवनतिके साथ ही दूसरे वर्णके हिन्दू भी नीचे गिर गये। और मेरे मनमें जरा भी शक नहीं कि ब्राह्मणत्व फिरसे जिन्दा न हुआ तो हिन्दू-धर्म मिट जायगा। अछूतपनका जड़मूलसे मिटना, मेरी समझसे, ब्राह्मणत्वके यानी हिन्दू-धर्मके फिरसे जिन्दा होनेकी अचूक कसौटी है। जैसे जैसे मैं हिन्दू धर्मशास्त्रोंका ज्यादा अध्ययन करता जाता हूं और सभी तरहके ब्राह्मणोंके साथ चर्चा करता जाता हूं, वैसे वैसे मेरा यह विश्वास बढ़ता जाता है कि अछूतपन हिन्दू-धर्म पर बड़ेसे बड़ा कलंक है। अिस विश्वासका बहुतसे विद्वान ब्राह्मणोंने समर्थन किया है। अिन विद्वानोंका अिसमें कुछ भी स्वार्थ नहीं है। वे सचाअीकी खोज करनेके लिअे जूझनेवाले हैं। अुन्हें अिससे कुछ मिलता नहीं; अपनी रायके लिअे अुन्होंने धन्यवाद तक स्वीकार नहीं किया।

पर आज ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोरे नाम ही रह गये हैं। जिस वर्णको मैं मानता हूं, वह पूरी तरह संकर हो गया

है। और पिछले अंकमें* वर्ण-धर्म पर अपने लेखमें कह गया हूं कि मैं चाहता हूं कि आज तमाम हिन्दू स्वेच्छासे शूद्र नाम धारण कर लें। ब्राह्मणत्वमें रहनेवाली सचाअीका दुनियाको दर्शन कराने और वर्ण-धर्मका सच्चा स्वरूप जिन्दा करनेका यह अेक ही रास्ता है। सब हिन्दुओंके शूद्र माने जानेसे ज्ञान, शक्ति और सम्पत्ति मिट नहीं जायगी, बल्कि वे सब अेक संप्रदायकी सेवामें काम न आकर सचाअी और मानव-जातिकी सेवामें काम आयेंगी। कुछ भी हो, अछूतपनके खिलाफ लड़ाअी चलानेमें और अिस लड़ाअीमें अपनेको होम देनेमें मेरी महत्त्वाकांक्षा सारे मनुष्य-समाजका कायापलट देखनेकी है। यह निरा सपना हो सकता है, सीपमें चांदी देखने जैसा कोरा भ्रम भी हो सकता है। जब तक यह सपना चल रहा है, तब तक मेरी दृष्टिमें वह खाली भ्रम नहीं है। और रोमां रोलांके शब्दोंमें कहूं तो 'जीत ध्येय तक पहुंचनेमें नहीं, बल्कि अुसके लिअे अथक साधना करनेमें है।'

हरिजनबन्धु, २६-४-'३३

१७

ब्राह्मण क्या करे ?

१

अेक महाराष्ट्री भाअी लिखते हैं :

"अेक अधेड़ अुम्रके भाअी, जिन्होंने कॉलेजकी पढ़ाअी की है और अभी बेकार हैं, मुझे लिखते हैं :

'दिन बहुत खराब आये हैं। मैं पढ़ा हुआ हूं। शरीरसे मजबूत हूं। काम करनेकी मेरी शक्ति जरा भी कम नहीं हुअी है। फिर भी लगभग साल भर होने आया, कहीं रोजगार नहीं मिलता। आजकल ब्राह्मण होना मानो पाप ही हो गया है। ब्राह्मण होनेके कारण ही नौकरी मिलना मुश्किल हो जाता

* देखिये पृष्ठ ५१ पर छपा 'वर्ण-धर्म' नामक लेख।

है। आप लोग हरिजनोंका काम लेकर बैठे हैं। हरिजनोंको बेशक अूंचा अुठाअिये, पर ब्राह्मणोंको दबाना कहांका न्याय है? आपको खयाल नहीं होगा कि बड़े कुटुम्बका खर्च चलाना कितना कठिन है। जहां नौकरी ढूंढ़िये वहीं पूछते हैं, किस जातिके हो? ब्राह्मण बतायें तो फौरन पूछनेवालेकी आवाज बदल जाती है। क्या यह रवैया ठीक है?'

"अैसे मौके पर क्या जवाब दिया जाय, कुछ सूझता नहीं; क्योंकि जवाब सिर्फ ठीक होना ही काफी नहीं है। अुससे लिखनेवालेको आश्वासन भी मिलना चाहिये। आप क्या आश्वासन देंगे?"

मैं आशा रखता हूं कि जो अनुभव अिस ब्राह्मणको हुआ, वैसा बहुतोंको नहीं होता होगा। अिसमें शक नहीं कि अेकको भी नहीं होना चाहिये। जो लायक है, अुसे नौकरी मिलनी चाहिये। अिसमें जाति, वर्ण या धर्मका भेद न होना चाहिये। अिस देशमें अिस देशके लोगोंको नौकरी या धन्धा मिलना आसान होना चाहिये।

यह तो आदर्शकी बात हुअी। हमारे देशमें अूंच-नीच वगैराके भावोंने जड़ जमा ली है। अिसलिअे गुण-दोषकी जांच करते वक्त जाति, वर्ण, धर्म वगैराकी जांच ज्यादा होती है। अिस कारण जहां ब्राह्मणको न रखनेका आग्रह हो, वहां अुसे न रखा जाय तो अुसमें अचम्भेकी कोअी बात नहीं। हमारे पापके कारण, धर्ममें पैठी हुअी सड़ांधके कारण, अशुभ बातें होती ही रहेंगी। अिसलिअे अिन्हें प्रायश्चित्तके तौर पर हमें सहन करना चाहिये।

लेकिन जो जन्मसे ब्राह्मण हैं और ब्राह्मणका धर्म पालना चाहते हैं, वे नौकरी क्यों ढूंढ़ें? ब्राह्मण होनेका दावा करनेवालेके लिअे तो लोगोंमें ब्रह्मज्ञान फैलाकर गुजारेके लिअे धर्मभावनावाले यजमानों पर आधार रखना ही ठीक है। नौकरी ढूंढ़नेवाले ब्राह्मणके लिअे सच्चा आश्वासन तो यही होगा कि वह अपना धर्म पाले। फिर अुसके लिअे निराशाका कारण ही नहीं रहेगा।

मैं अुम्मीद रखता हूं कि कोअी यह कहकर मेरी निन्दा न करेगा कि वर्ण-धर्म मिट गया, अैसा कहनेवाला मैं आफतमें फंसने पर वर्ण-धर्मका आसरा कैसे लेता हूं। कारण, वर्ण-धर्मके मिट जानेका यह अर्थ नहीं कि किसीको अुसका पालन न करना चाहिये। वर्ण-धर्मको माननेवालेके लिअे तो अपनी तरफसे अुस धर्मको पूरी तरह पालना ही ठीक है। अुक्त ब्राह्मण ब्राह्मण होनेका दावा करता है, अुससे यही मालूम होता है कि वह खुद वर्ण-धर्मको मानता है। अिसलिअे मेरी तो यह सलाह है कि वह अुसी धर्म पर चले और नौकरीका लालच छोड़ दे।

अिस कठिन कालमें भी ब्राह्मणोंने व्यक्तियोंके नाते देशकी थोड़ी सेवा नहीं की है। दूसरोंके मुकाबले ब्राह्मणोंका त्याग जरूर अधिक है। लेकिन ब्राह्मणोंका अच्छेसे अच्छा त्याग तो नौकरी वगैरा सभी अर्थ-मात्रको छोड़ना है। ब्राह्मण धर्मकी शोभा तो सिर्फ परमार्थमें ही है। ब्राह्मण अगर वर्ण-धर्मका मर्म जानकर अुसके मुताबिक चलें, तो वर्ण-धर्मका आसानीसे अुद्धार हो सकता है। अिसलिअे अुक्त ब्राह्मण और अुसके जैसी हालतवाले दूसरे ब्राह्मणोंको मेरी सलाह है कि वे ब्राह्मणका धर्म पालनेकी योग्यता पैदा करें, अुसके मुताबिक अपना आचरण रखें और अर्थलाभका लालच छोड़ दें।

हरिजनबन्धु, १०-९-'३३

२

मेरे 'ब्राह्मण क्या करे ?' लेख परसे मूल पत्र लिखनेवाले महाराष्ट्री भाअी दुबारा लिखते हैं :

> "मुझे आदरके साथ बताना चाहिये कि 'ब्राह्मण क्या करे ?' अिस शीर्षकसे आपने जो जवाब लिखा है, अुससे मेरा समाधान नहीं हुआ। मुझे पत्र लिखनेवाले भाअी आदर्श ब्राह्मण होनेका दावा करते ही नहीं। यह बात तो मिट नहीं सकती कि वे जातिसे ब्राह्मण हैं। मान लीजिये कि अुनकी जगह मैं ही हूं। मुझे ब्राह्मणका धर्म खास तौर पर पालनेका अुत्साह नहीं है।

जन्मसे हिन्दू हूं और हिन्दू ही रहना चाहता हूं। जन्मसे ब्राह्मण होकर हिन्दू रहते हुओे मुझसे अब्राह्मण तो हुआ नहीं जायगा। मैं जानता हूं कि हमारे यहां ब्राह्मणोंके हाथमें जब हुकूमत थी, तब धार्मिक प्रतिष्ठा और राजनीतिक असरके कारण ब्राह्मण अिधर अुधर जम गये। अंग्रेजी राज्य कायम होनेके बाद भी समय पाकर बुद्धिके जोरसे ब्राह्मण सरकारी नौकरियोंमें और बुद्धिजीवी धन्धोंमें आगे आये। यह सब मैं समझता हूं। जब तक मैं यह समझता न था, तब तक मान लीजिये कि मैंने अपनी जातिके नौजवानोंकी शिक्षामें ही अपनी सारी कमाओ भी खर्च कर दी। आज मुझे अुसका पछतावा होता है। अिसके लिअे मैं प्रायश्चित्त करनेको भी तैयार हूं। मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि जहां मेहनत कम और कमाओ ज्यादा हो, अुन धन्धोंमें अब्राह्मणोंको ही ज्यादा जगह मिलनी चाहिये। पर मैं कितना ही प्रायश्चित्त करूं, तब भी मुझे अपने बड़े कुटुम्बका पालन तो करना ही पड़ेगा। मैं दिनभर कड़ी मेहनत करूं, पर मुझे डेढ़ सौ-दो सौ रुपयेकी जरूरत है। तब मुझे क्या करना चाहिये? धर्म-भावनावाले यजमान मेरा पालन करनेके लिअे कहां तैयार हैं? और ब्रह्मज्ञानके प्रचारका धन्धा मैं किस तरह कर सकता हूं? मैं तो मामूली नागरिक हूं। मामूली आदमियोंको ब्रह्मज्ञानकी क्या पड़ी है? वर्ण-धर्म कायम हो तो मैं जरूर खुश होअूं। पर तब तक मेरे गुजारेका क्या हो? मैं ब्राह्मण होनेके कारण कोओ खास लाभ नहीं मांगता। ब्राह्मण होनेके कारण ही मुझे सरकारी या म्युनिसिपैलिटी जैसी सार्वजनिक संस्थाकी नौकरी न मिले या अिसमें मुश्किल पैदा हो, तो अिसका अिलाज क्या है? यह सब मैं अपने मित्रकी तरफसे नहीं लिख रहा हूं। पर बहुतसे ब्राह्मण जो बात करते हैं, अुसका सार मैंने यहां दिया है। आप ठीक समझें तो अिस-हालतकी चर्चा कीजिये।"

अिस पत्रसे बहुतसे प्रश्न अुठते हैं। अैसी बात नहीं कि ब्राह्मणको जो अड़चन होती है, वह दूसरोंको नहीं भोगनी पड़ती। आज किसी

न किसी बहाने सभीको नौकरी मिलनेमें थोड़ी मुश्किल तो होती ही है। आज तक ब्राह्मणोंको नौकरी आसानीसे मिल सकी है। अब अैसा नहीं होता। अिसमें शक नहीं कि ब्राह्मणोंकी जो हालत आज हो गयी या होती दीखती है, वैसी थोड़े साल पहले औरोंकी थी। जहां जातियां होंगी, वहां अैसे चढ़ाव-अुतार आते ही रहेंगे। अिसलिअे किसीको सन्तोषप्रद आश्वासन देना मुश्किल है।

यह विचारने लायक है कि अिस अड़चनकी जड़में अेक चीज है। नौकरियोंकी संख्या हमेशा मर्यादित ही रहेगी। समयके साथ अुनके लिअे अुम्मीदवारोंकी तादाद बढ़ती ही रहेगी। अिसलिअे सीधा रास्ता यही जान पड़ता है कि लोग नौकरी छोड़ना सीखें, दूसरे धन्धोंकी तरफ मुड़ें और अुनकी योग्यता पैदा करें। अैसा फेरबदल करनेमें बीचके समयमें तकलीफ जरूर होगी, लेकिन फल अच्छा निकलेगा। दूसरे देशोंमें अैसा अनुभव हुआ है और जो लोग आज तक नौकरी करते थे वे अब धन्धोंमें लग गये हैं।

दूसरी बात ध्यानमें रखनेकी यह है कि खर्च कम करना चाहिये, अपनी और कुटुम्बकी जरूरतें घटानी चाहिये। जीवनको सादा बनानेकी जरूरत दिनोंदिन सारी दुनियामें ज्यादा साफ होती जा रही है। अिस मतलबकी अेक अंग्रेजी कहावत है— "सादा जीवन और अूंचे विचार'। हिन्दुस्तानमें सादगी अेक अच्छा गुण ही नहीं, बल्कि धर्मका अंग है।

कुटुम्बकी स्त्रियोंको भी घरखर्चमें हाथ बंटानेकी जरूरत है। मजदूर वर्गकी औरतें घरका कामकाज करते हुअे भी कुछ न कुछ मजदूरी करके कमाती हैं। दूसरी औरतें भी अैसा क्यों न करें? घरमें कमानेवाला अेक और खानेवाले बहुत हों, तो अुस पर अनुचित बोझा पड़े बिना नहीं रह सकता। अिसलिअे जिन ब्राह्मणोंको नौकरी मिलनेमें मुश्किल आती है, अुन्हें अिस सूचना पर भी विचार करना चाहिये।

हरिजनबन्धु, १७-९-'३३

१८

क्षत्रियका धर्म

काठियावाड़-राजपूत-परिषद् होनेवाली है। अुसमें शरीक होनेकी मेरी बड़ी अिच्छा है। मगर यह तो असम्भव ही है।

काठियावाड़ बहादुरोंकी धरती थी। राजपूतोंकी वीरता दुनिया-भरमें मशहूर है। लेकिन पुरानी बहादुरीकी तारीफसे आजके राजपूत बहादुर नहीं हो सकते। ब्राह्मणोंने ब्रह्मज्ञान छोड़ा, राजपूतोंने रक्षाका धर्म छोड़कर बनियापन अपना लिया, बनिये गुलाम हो गये। फिर शूद्र सेवक न रहें, तो अुन्हें दोष कौन दे सकता है? चारों वर्ण गिर गये, अिसलिअे अिन चारमें से पांचवां धर्मविरुद्ध वर्ण पैदा हुआ और अुसे अछूत माना गया। पांचवेंको पैदा करके और अुसे दबाकर चार वर्ण खुद दबे और पतित हुअे।

अिस कठिन हालतमें से हिन्दुओंको कौन निकाले? हिन्दू न बचें तो मुसलमान भी नहीं बच सकते। चलती रेलगाड़ीके पास हम खड़े नहीं रह सकते, क्योंकि अुसकी तेज रफ्तार हमें खींच ले जाती है।

अिस तरह हिन्दुस्तानके आजाद होनेका अुपाय हिन्दुओंकी अुन्नतिमें है। हिन्दुओंकी अुन्नति सिर्फ धार्मिक हो तभी हिन्दुस्तान बचेगा। हिन्दू पश्चिमके पशुबलकी नकल करने लगेंगे, तो खुद गिरेंगे और दूसरोंको भी गिरायेंगे।

अिस गिरी हुअी हिन्दू दुनियाको कौन अुठावे? डरे हुअेको निडर कौन बनाये? यह धर्म तो क्षत्रियका ही हो सकता है। अिसलिअे राजपूत-परिषद् अपना कर्तव्य समझना और पालना चाहे, तो अुसे अपने धर्मका विचार करना होगा।

बचावके लिअे तलवारकी जरूरत नहीं। तलवारका जमाना गया या जाने ही वाला है। तलवारका अनुभव जगतने खूब कर लिया है। जगत अब तलवारसे तंग आ गया है। अैसा लगता है कि पश्चिमको

भी थकान आ गअी है। मारकर रक्षा करे वह क्षत्रिय नहीं, पर मरकर जो रक्षा करे वही क्षत्रिय है। भागे वह बहादुर नहीं, पर छाती खोलकर सामने खड़ा रहे और घाव किये बिना घाव सहे वही क्षत्रिय है।

पर घड़ीभर मान लीजिये कि तलवारकी आवश्यकता है। फिर भी क्या हुआ? रामने तलवार चलाअी हो, तो अुससे पहले वे चौदह वर्ष वनवास भुगतकर तपस्या करके शुद्ध हो लिये थे। पाण्डवोंने भी वनवास भोगा था। अर्जुनको ठेठ अिन्द्रके पास जाकर हथियार लाने पड़े थे। हथियारकी ताकतके पहले तपका बल चाहिये। अगर अैसा न हो तो गृह-युद्ध हो और जैसे यादवोंका खुद अपने ही हथियारोंसे नाश हुआ, वैसा ही हमारे हथियार हमारा नाश करें।

अिसलिअे राजपूत-परिषद्का पहला कर्तव्य आत्माकी अुन्नति करना है। राजपूत अपने हकोंकी बात तो करेंगे ही, पर पहले अुन्हें अपने धर्मकी बात करनी चाहिये। वे व्यसन छोड़ें, सादगी ग्रहण करें, गरीबसे गरीब काठियावाड़ीको पहचानें, अुसके दुःखमें हिस्सा लें और अुसकी सेवा करें। यह सेवा करनेका हक कोअी छीन नहीं सकता। काठियावाड़के किसी भी आदमीको काठियावाड़ छोड़ना पड़े, तो यह राजपूतके लिअे शर्मकी बात है। जहां चरखा है, पींजन है और करघा है, वहां रोजी तो है ही। काठियावाड़की अमृत जैसी हवा छोड़कर बम्बअीकी गंदी हवा खानेको काठियावाड़ी किसलिअे जाय? अिसका जवाब दूसरे काठियावाड़ी दें अुसके पहले राजपूतोंको देना चाहिये। अिसका लांछन काठियावाड़के राजाओं पर ही है। काठिया-वाड़के राजा प्रजाकी भलाअीका ही खयाल करें, तो काठियावाड़की प्रजाको देशनिकाला किस लिअे लेना पड़े? राजपूत-परिषद्में राजा तो होंगे नहीं, पर राजपूत समझें तो राजा भी समझ जायंगे। यह जमाना प्रजासत्ताका है। अिसलिअे जैसी प्रजा होगी, वैसे ही राजा भी होंगे। प्रजाकी जागृतिमें राजपूत अच्छा हिस्सा ले सकते हैं।

दूसरोंके दोष निकालनेके बजाय परिषद्के सदस्य अपने दोष निकालनेमें ज्यादा समय लगावेंगे, तो दूसरोंको राजमार्ग दिखायेंगे।

आजकल हम अपने दुःखोंके लिअे दूसरोंकी बुराअी करते हैं। हम भूल जाते हैं या भूल जाना चाहते हैं कि अपने दुःखोंके लिअे हम खुद जिम्मेदार हैं। जुल्म सहनेवाला न हो तो जालिम क्या करे? जब तक हम बसमें होनेकी कमजोरी रखेंगे, तब तक बसमें करनेवाले मिलते ही रहेंगे। बसमें करनेवालोंको गालियां देना आसान लेकिन बेकार है। अपनी कमजोरी ढूंढ़कर अुसे दूर करना मुश्किल तो है, पर यही फल देनेवाला है। और यह कमजोरी दूर करनेका अिलाज हमारे ही पास होनेके कारण कोअी अुसे छीन नहीं सकता।

राजपूत-परिषद्के मेम्बरोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे अिस विचारको मुख्य समझकर अपने दिलोंको टटोलें।

अखीरमें अुन्हें अपने अनुभवका सार बता दूं। भाषणों और भाषण देनेवालोंसे डरिये। अुनसे दूर रहना ही अच्छा है। मुंह बन्द करके काम करनेका ही तरीका रखा जायगा तो काम सुधरेगा। भूखेके दुःखको देखकर रोनेवाला भूखेकी भूख दूर नहीं कर सकता; लेकिन जन्मसे गूंगा कोअी साधु अुसके पास अेक मुट्ठी जुवार ले जायगा, तो भूखेकी आंख चमक अुठेगी, अुसके चेहरे पर लाली लौट आयेगी और अुसके होठों पर हंसी दिखाअी देगी। अुसकी आंतें अुस गूंगेको दुआ देंगी। अीश्वर हमें भाषणोंसे सीख नहीं देता; वह सदा काममें लगा रहता है। हम सोते हैं, तब भी वह जागता रहता है। अुसे अपने काममें बोलनेका वक्त ही नहीं बचता। राजपूतोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे काठियावाड़के दूसरे बढ़-बढ़कर बोलनेवाले राजनीतिक स्वयंसेवकोंको अपने आचरणसे शिक्षा दें।

नवजीवन, २५–५–'२४

१९

व्यापारीका फर्ज

[धुलियाके व्यापारियोंकी ओर से भेंट की हुआी थैली और मानपत्रके जवाबमें दिया हुआ भाषण महादेवभाओीके 'महाराष्ट्रका पत्र' में से लिया गया है। मानपत्रमें गांधीजीको 'बनियेका बेटा' बताया गया था। अुसीका जिक्र करके गांधीजी शुरू करते हैं। — **प्रकाशक**]

"यह आपने मुझे याद दिलाकर ठीक किया कि मैं गरीब बनियेका बेटा हूं। गरीब बनियेका बेटा बनकर ही मैं हिन्दुस्तानके गरीब लोगोंके लिअे अेक बड़ा व्यापार चला रहा हूं। और व्यापारके सिवा गोरक्षा भी मेरा धन्धा होना चाहिये; अिसलिअे गोरक्षाका धन्धा भी कर लिया है। . . . आज शुद्ध व्यापार पूरी तरह मिट गया है। और अुसी तरह विवेकपूर्ण गोरक्षाका भी नाश हो गया है। और मैं अपनेको समझदार बनिया मनवाता हूं, अिसीलिअे ये दो धन्धे आपके सामने पेश करता हूं। मुझमें बनिया-बुद्धि है, क्षत्रियत्व भी है और थोड़ासा ब्राह्मणत्व भी है। पर ये सब बातें छोड़कर मैं अिस सालके लिअे अेक कंजूस बनिया बन जाना चाहता हूं। और जिस तरह अेक लोभी बनिया कौड़ी कौड़ीका हिसाब करता है, अुसी तरह आपसे मैं कौड़ी कौड़ीका हिसाब करना चाहता हूं। अिसलिअे आपने ४,१०० रु० दिये हैं और शायद कल तक ५,००० रु० पूरे कर देंगे, फिर भी मेरा मन मुझे कहता ही रहेगा कि धुलियाके लोगोंने ज्यादा क्यों नहीं दिया? यह बात नहीं कि मैं बनिया होनेके कारण और मांगता हूं; पर मुझे लगता है कि हिन्दुस्तानको शूद्रने नहीं खोया, क्षत्रियने नहीं खोया, ब्राह्मणने नहीं खोया, बनियेने ही खोया है। और अगर कोअी अुसे वापस ले सकता है, तो बनिया ही ले सकता है। अितिहासमें अैसी मिसालें मौजूद हैं, जिनमें बनिये घमण्डके साथ कहते हैं कि हमने सरकारकी मदद की, हमने जासूसी की और

सरकारकी फलां सेवा की और अब सरकार हमारी मदद करे तो अच्छा। रमेशचंद्र दत्तने भी बताया है कि हिन्दुस्तान व्यापारियोंके जरिये ही हमारे हाथसे गया है।

"व्यापार करनेमें कोअी शर्मकी बात नहीं है। व्यापार ठीक तरहसे हो, तो अुसमें कुछ भी बेअिज्जती नहीं। अंग्रेज तो व्यापारी बनकर ही आये थे। वे व्यापारके लिअे क्षत्रिय बने, वे व्यापार पर कायम हुअे अपने राज्यके बचावके लिअे ब्राह्मण भी बने। वर्णाश्रम-धर्म यह नहीं बताता कि बनिया ब्राह्मण न बने, अपनी मां-बहनको बचानेके लिअे क्षत्रिय न बने। वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार तो बनियेके धर्मकी विशेषता बनियापन है, 'कृषिगोरक्ष्यवाणिज्य'* है। अपना व्यापार बढ़ानेके लिअे अंग्रेजोंने व्यापारी होते हुअे भी अपनी बुद्धि, ज्ञान और बहादुरीको अेक साथ काममें लिया, और हम अुनकी शक्तिसे चकित होकर वर्ण-धर्म भूलकर पागल बने, नामर्द बने, देशद्रोही बने और बनियेका सहज धर्म भूल गये। अब बाजी वकीलोंसे, डाक्टरोंसे, ब्राह्मणोंसे या क्षत्रियोंसे नहीं सुधरेगी। पर बनिये अपना धर्म पालें, देशके लिअे खेती, गोरक्षा और व्यापार करें तो ही सुधरेगी। यह आपके मानपत्रका मेरा जवाब है।

"आपकी काली टोपियां, आपकी स्त्रियोंकी साड़ियां शर्मकी, गुलामीकी पोशाक हैं। लोगोंको ये टोपियां और साड़ियां देनेवाले बनिये हैं। आपको कच्चा माल बचाना है। अिसके बजाय आपने अुसका सौदा किया। अिसलिअे आज आपकी बुद्धि जड़ हो गअी है। आप मिलें खड़ी करते हैं, पश्चिमकी राक्षसी सभ्यताकी नकल करते हैं और लोगोंका सत्त्व खींच लेनेवाला सामान पैदा करते हैं। अगर पश्चिमके लोग पूर्वके लोगोंको चूसना बन्द कर दें, तो अुनकी आधी मशीनें बन्द हो जायं। आप भी अुसी रास्ते जा रहे हैं। अगर आप स्वराज्यके लायक बनना चाहते हों, तो जिसे मैं झूठा व्यापार कहता हूं अुसे छोड़िये और सच्चा व्यापार अपनाअिये। आपका सीधा-सादा धर्म यही है।

---

* खेती, गोरक्षा और व्यापार।

"भगवद्‌गीताका वैश्य करोड़पति बननेवाला नहीं, लेकिन देशको कुटुम्ब समझकर अुसकी भलाअीके लिअे अपने धर्म पर चलनेवाला है। थोड़ी बुद्धिको काममें लीजिये, थोड़ा विचार कीजिये और थोड़ा ब्रह्म-चर्य पालिये, तो आपका फर्ज साफ समझमें आयेगा। आप अपना कर्तव्य समझने लगें, तो साठ करोड़का विदेशी कपड़ा आना बन्द हो जाय और ९ लाख चमड़े परदेश जानेसे रुक जायं। लेकिन आज तो मैं आपसे आदर्श गोशाला बनानेको कहता हूं, आदर्श चर्मालय खोलनेको कहता हूं, तो आप नाक-भौं सिकोड़ते हैं।

"यह नहीं कि मैं साठ बरसका हो गया हूं, अिसलिअे मेरी बुद्धि मारी गयी है। पर मेरे साथ तो सैकड़ों जवान काम कर रहे हैं। पता नहीं, मुझे कितने वर्ष जीना है। मैं तो गंगाके किनारे बैठा हूं। मैं किसलिअे किसी चीजको झूठी समझकर सच्ची मनवानेकी कोशिश करूं? आप मुझे समझा दें कि मेरा काम झूठा है, तो आपके चरणोंमें बैठूंगा — जैसे परशुराम रामचंद्रजीके चरणोंमें बैठे थे। मेरा दिल जीतनेवाला कोअी भी आदमी मिल जाय, तो मैं अुसे साष्टांग नमस्कार करूं। लेकिन आप मुझे बुद्धि और दिलसे न जीत सकें, तो मेरा खादी और गोरक्षाका काम अपना लीजिये। अिसके बिना अुद्धार नहीं होगा।"

नवजीवन, २७–२–'२७

२०

शूद्रोंका हक

[मैसूरमें वहांके संस्कृत विद्यालयने गांधीजीको बुलाकर संस्कृतमें मानपत्र दिया, अुसके लिअे धन्यवाद देते हुअे किया गया भाषण, महादेवभाअीके साप्ताहिक पत्रमें से लिया गया है। —प्रकाशक]

"आपने मुझे संस्कृतमें मानपत्र देकर मेरी बड़ी अिज्जत की है। अिसके लिअे मैं आपका आभारी हूं। मैं मानता हूं कि हरअेक हिन्दू लड़के और लड़कीका संस्कृत जानना धर्म है; और हरअेक हिन्दूको अितनी संस्कृत आनी चाहिये कि जरूरत पड़ने पर वह अपने विचार संस्कृतमें व्यक्त कर सके।"

अितना कहकर गांधीजीने पण्डितोंके लिअे दो शब्द कहे:

"मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि मैसूर राज्यमें शूद्रों और अछूतोंको संस्कृत सिखानेसे डरनेवाले या संस्कृत सिखाना पाप समझनेवाले पण्डित मौजूद हैं। मुझे मालूम नहीं कि अिसके लिअे शास्त्रोंमें कहां प्रमाण है कि शूद्रोंको संस्कृत सीखने यानी वेद पढ़नेका अधिकार नहीं है। पर सनातनी हिन्दूकी हैसियतसे मेरी पक्की राय है कि अैसा कोअी प्रमाण हो भी, तो हमें अपने शास्त्रोंका अक्षरार्थ करके अुनकी आत्माको नहीं मारना चाहिये। जैसे मनुष्यके विकासका सिलसिला जारी रहता है, वैसे ही शब्दोंका विकास भी होता ही रहता है; और अगर किसी भी वेद-वचनका दिल और दिमागको न जंचनेवाला अर्थ किया जाता हो तो वह छोड़ देने लायक है।

"अब मेरी समझसे हिन्दू-धर्ममें अछूतपनके लिअे कहीं भी जगह नहीं है। और हिन्दुस्तानके बहुतसे हिस्सोंमें मैंने अैसे बहुतसे अछूत देखे हैं, जो सवर्ण भाअियोंसे बुद्धि या नीतिमें जरा भी हलके नहीं हैं। आज जिन ब्राह्मण लड़के-लड़कियोंने संस्कृतके श्लोक सुनाये अुतना ही शुद्ध अुच्चारण करनेवाले आदिकर्णाटिक लड़के तो मैंने मैसूरमें बहुत

देखे हैं। अिसलिअे मैं आग्रहके साथ मानता हूं कि अछूतपनके लिअे हिन्दू-धर्ममें किसी भी कारणसे जगह नहीं हो सकती। फिर भी, आपने मुझे विद्यालयमें बुलाकर मान दिया और मेरे विचारोंके साथ हमदर्दी दिखाअी, अुसके लिअे मैं आपका आभारी हूं।

"यहां कअी ब्राह्मण तकली चला रहे हैं, यह देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है। लेकिन मैं यह चाहता हूं कि अिस तकलीके सूतसे जनेअू बनाकर ही आप लोग संतोष न मान लें। जनेअू तो अिसी सूतके बनाअिये; पर अपने कपड़े भी अिसी सूतके बनवाकर पहनेंगे, तभी आपके धर्मकी शोभा होगी। अिस विद्यालयमें आकर विदेशी कपड़े पहने हुअे लड़के-लड़कियोंको संस्कृत श्लोक बोलते देखकर मुझे तो बड़ा रंज हुआ। मुझे यह बहुत बुरा लगा। बाहरके बर्तावमें धर्मका रहस्य नहीं है, पर बाहरसे बहुत बार भीतरकी चीज जाहिर हो जाती है। अिसलिअे जब जब मैं संस्कृतकी पाठशालाओंमें जाता हूं या जिन संस्थाओंमें आर्योंकी विद्या पढ़ाअी जाती है वहां जाता हूं, तब मैं हमारे पुराने अृषियोंके सादे और पवित्र वातावरणके दर्शन करनेकी आशा रखता हूं। मुझे अफसोस है कि यहां मैं वह दर्शन नहीं कर सका। और मैं शिक्षकों और बच्चोंके मां-बापोंसे प्रार्थना करता हूं कि वे यहां पढ़नेवाले बच्चोंको आर्योंकी संस्कृतिके लायक खादी पहनावें।"

नवजीवन, २१-८-'२७

२१

हज्जाम या 'वाळंद'?

अेक भाअी पालीताणासे लिखते हैं :

"आप 'वाळंद'* शब्दके बदले 'हज्जाम' शब्द काममें लेते हैं। काका कालेलकरने मान्यवर श्री धर्मानन्द कोसंबीकी 'निवेदन' नामकी मराठी पुस्तकके गुजराती अनुवादमें 'वाळंद' शब्द अिस्तेमाल किया है, और दूसरी जगह भी वही शब्द काममें लिया है। अिसी तरह गुजराती भाषामें आम तौर पर 'वाळंद' शब्द ही काममें लिया जाता है।

"'हज्जाम' शब्द अिस्तेमाल करनेसे समाज नाअीको हलकी नजरसे देखता है; और बहुत बार कितने ही भाअियोंकी तरफसे अुन्हें अिसके लिअे अपमान भी सहना पड़ता है। और फिर दूसरे लेखक भी बहुत कुछ आपकी नकल करते हैं। अिसलिअे आगेके लिअे तो सुधार बहुत ही जरूरी है। हो सके तो कृपा करके 'नवजीवन' के जरिये सुधार जाहिर कीजिये, ताकि गरीब जातिका भला हो।"

हज्जाम शब्दके अिस्तेमालमें जो हलकापन है, वह असलमें धंधेके लिअे है। हज्जाम शब्द अुनके लिअे है, जिनका धंधा बाल काटनेका है। वह अच्छा न लगे तो मैं 'नवजीवन' में 'वाळंद' शब्द ही काममें लूंगा। लेकिन मेरी पक्की राय है कि अिससे असली रोग दूर नहीं होगा। सच्चा अुपाय तो यह है कि जो जो जरूरी मगर गंदगी साफ करनेवाले धंधे हैं, अुन धंधोंके लिअे नफरत दूर की जाय; फिर नाम कुछ भी रखा जाय, अिस बारेमें हम अुदासीन रह सकते हैं। 'नाम धरावे हेते हरि वाळपणामां जाये मरी'+ — अिसका हम क्या करें?

---

* गुजरातीमें नाअीके लिअे अिस्तेमाल किया जानेवाला अेक शब्द।

\+ माता-पिता प्रेमसे बालकका नाम हरि रखते हैं, लेकिन वह बचपनमें ही मर जाता है।

अिससे हम 'हरि' शब्दका तिरस्कार नहीं करेंगे। शब्दोंकी प्रतिष्ठा मनुष्यकी प्रतिष्ठाकी तरह बढ़ती-घटती रहती है और रहेगी।

अिस सुधरे हुअे जमानेमें तो सब अपनी अपनी हजामत करना सीख रहे हैं, अिसलिअे 'वाळंद' के धंधेमें जो हलकापन है, वह अपने-आप निकल जायगा। कुछ कुछ निकल भी गया है। मेरे दिलमें 'वाळंद', भंगी, चमार, ढेढ़ वगैरा शब्दके लिअे कुछ भी नफरत नहीं रही। मैं तो ये सब धंधे करता हूं, दूसरोंको करनेकी प्रेरणा देता हूं और अैसा करनेमें मुझे आनंद आता है। अुक्त धंधे करनेवाले भाअियोंको मेरी सलाह है कि वे यह भूल जायं कि अिस धंधेके लिअे समाजमें नफरत है। और वे अिन धंधोंमें होशियार होकर, अपना आचार-विचार शुद्ध करके अिन धंधोंकी और अपनी अिज्जत बढ़ावें। अिसी गरजसे, मुझे अपनी हजामत अच्छी तरह बनाना आता है तो भी, जहां कहीं खादी पहननेवाला नाअी मिल सकता है, वहां मैं अुसे तकलीफ देता हूं और अुसे देशसेवामें लगानेकी कोशिश करता हूं। हमें शुद्ध स्वराज्य लेना है, अिसीलिअे अैसे धंधे करनेवाले सभी लोगोंकी मददकी और सुधारकी जरूरत है। हमारे यहां चमार, जुलाहे, मोची और ढेढ़ वगैरा ज्ञानी भक्त हो चुके हैं। तो फिर अुनमें से कोअी अपनी सेवाके बल पर राष्ट्रपति हो जाय तो क्या बड़ी बात है? अैसा धंधा करनेवाला अपना आचरण बिलकुल शुद्ध रख सकता है और अिस तरह अपनी बुद्धि तेज कर सकता है। दुःख यह है कि अैसा धंधा करनेवाले बुद्धिशाली निकलते हैं, तो अुन्हें अपने धंधेसे शर्म आती है और अखीरमें वे अुसे छोड़ देते हैं। मेरी कल्पनाका राष्ट्रपति 'वाळंद' या मोचीके धंधेसे गुजर करते हुअे भी राष्ट्रकी बागडोर सम्हालता रहेगा। यह हो सकता है कि राष्ट्रके कामके बोझके कारण वह अपने धंधेको पूरी तरह न कर सके। लेकिन यह तो अलग सवाल है।

नवजीवन, २२–१२–'२९

२२

शरीर-श्रम

१

[सत्याग्रह आश्रमकी नियमावलीसे]

"अस्तेय और अपरिग्रहके पालनके लिअे शरीर-श्रम करनेका नियम जरूरी है। अिसके सिवा, सभी आदमी अपना गुजर शरीरकी मेहनतसे करें, तभी समाजका और अपना द्रोह करनेसे बच सकते हैं। जिस स्त्री या पुरुषके हाथ-पैर चलते हैं और जिसमें समझ आ गयी है, अुसे अपना रोजका खुद निपटाने लायक सब काम कर लेना चाहिये और दूसरेकी सेवा बिना कारण नहीं लेनी चाहिये। लेकिन बच्चोंकी, दूसरे अपंग लोगोंकी और बूढ़े स्त्री-पुरुषोंकी सेवाका मौका आ जाय, तो अुसे करना सामाजिक जिम्मेदारी समझनेवाले हर अिन्सानका फर्ज है।

"अिस आदर्शको सामने रखकर आश्रममें मजदूर तभी रखे जाते हैं, जब अुनके बिना काम नहीं चलता। और अुनके साथ मालिक-नौकरका बर्ताव नहीं किया जाता।"

२

[अूपर लिखे व्रतको समझानेवाला 'मंगल-प्रभात' का प्रकरण]

शरीर-श्रम मनुष्यमात्रके लिअे लाजिमी है, यह बात पहले-पहल पूरी तरह मेरे मनमें टॉल्स्टॉयके अेक निबंधसे बैठी। अितने साफ तौर पर जाननेसे पहले ही मैं अिस बात पर अमल तो करने लग गया था — रस्किनके 'अण्टु दिस लास्ट' या 'सर्वोदय' को पढ़नेके बाद तुरन्त ही। शरीर-श्रम अंग्रेजीके 'ब्रेड लेबर' शब्दका अनुवाद है। 'ब्रेड लेबर' का शब्दशः अनुवाद रोटी (के लिअे) - श्रम है। यह अीश्वरी नियम है कि रोटीके लिअे हरअेक अिन्सानको श्रम करना

चाहिये और हाथ-पैर हिलाना चाहिये। अिसकी खोज टॉल्स्टॉयने पहले-पहल नहीं की, बल्कि अुनसे बहुत कम प्रसिद्ध रूसी लेखक बुर्नोह्ने की थी। अुसे टॉल्स्टॉयने मशहूर किया और अपनाया।

अिसकी झांकी मुझे भगवद्गीताके तीसरे अध्यायमें मिलती है। यज्ञ न करनेवालेके लिअे अितना कड़ा शाप है कि जो यज्ञ किये बिना खाता है, वह चोरीका अन्न खाता है। यहां यज्ञका अर्थ शरीर-श्रम या रोटी-श्रम ही अच्छा लगता है। और मेरी रायसे यह अर्थ हो भी सकता है। कुछ भी हो, हमारा व्रत अिस तरहसे पैदा हुआ है। बुद्धि भी हमें अिसी चीजकी तरफ ले जाती है। जो श्रम न करे, अुसे खानेका क्या हक है? बाअिबल कहती है: 'तू अपनी रोटी पसीना बहाकर कमाना और खाना।'

करोड़पति भी अगर अपनी खाट पर पड़ा रहे और अुसके मुंहमें कोअी डाले तभी खाय, तो वह बहुत समय तक नहीं खा सकता; अुसमें अुसे रस भी नहीं रहेगा। अिसलिअे वह कसरत वगैरा करके भूख पैदा करता है और अपना ही हाथ-मुंह हिलाकर खाता है। अगर अिस प्रकार कुछ न कुछ कसरत राजा और रंक सबको करनी पड़ती है, तो फिर यह सवाल अपने-आप खड़ा होता है कि रोटी पैदा करनेके लिअे ही सब कसरत क्यों न करें? किसानको हवा खाने या कसरत करनेके लिअे कोअी नहीं कहता। और दुनियाके नब्बे फी सदीसे भी ज्यादा आदमियोंका गुजर खेतीसे होता है। अिनकी नकल बाकीके दस फी सदी लोग करें, तो जगतमें कितना सुख, कितनी शांति और कितनी तन्दुरुस्ती फैले? और खेतीके साथ बुद्धि मिल जाय, तो अुसके साथ लगी हुअी बहुतसी अड़चनें कम हो जायं।

दूसरे, शरीर-श्रमके अिस निरपवाद कानूनको सब मानें, तो अूंच-नीचका भेद मिट जाय। आज तो जहां अूंच-नीचकी गंध भी नहीं थी वहां, यानी वर्ण-व्यवस्थामें, भी वह पैठ गयी है। नौकर-मालिकका भेद सब जगह फैल गया है, और गरीब अमीरको फूटी आंखसे भी देख नहीं सकता। अगर सब रोटीके लायक श्रम करें, तो अूंच-नीचका भेद जाता रहे; और फिर भी धनिक वर्ग रहा, तो वह अपनेको

धनका मालिक नहीं, बल्कि अुसका सिर्फ ट्रस्टी समझेगा और अुसको खासकर लोगोंकी सेवामें ही लगायेगा। जिसे अहिंसाका पालन करना है, सचाअीकी पूजा करनी है, ब्रह्मचर्यको स्वाभाविक बनाना है, अुसके लिअे तो शरीर-श्रम रामबाण हो जाता है।

असलमें तो अैसा श्रम खेती ही है। लेकिन अभी तो यह हालत है कि सब असे नहीं कर सकते। अिसलिअे खेतीका आदर्श ध्यानमें रखकर अिन्सान खेतीके अेवजमें भले ही दूसरा श्रम करे — जैसे कताअी, बुनाअी, सुतारी, लहारी वगैरा वगैरा।

सबको अपना भंगी तो खुद ही बन जाना चाहिये। जो खाता है, वह मलत्याग तो करता ही है। अिसलिअे यही सबसे अच्छा है कि जो मलत्याग करे, वही अुसे गाड़े। यह न बन पड़े तो सारा कुटुम्ब अपना कर्त्तव्य करे। मुझे बरसोंसे लगता है कि जहां भंगीका जुदा काम सोचा गया है, वहां कोअी बड़ा दोष घुस गया है। हमारे पास अिसका अितिहास नहीं कि अिस जरूरी और सेहतको बचानेवाले कामको हलकेसे हलका पहले-पहल किसने माना होगा। जिसने माना अुसने हमारी भलाअी तो हरगिज नहीं की। यह भावना हमारे दिलमें बचपनसे ही ठंसनी चाहिये कि हम सब भंगी हैं; और अिसे ठंसानेका सहजसे सहज अुपाय यह है कि जो समझ गये हैं, वे शरीर-श्रमकी शुरुआत पाखाना-सफाअीसे करें। जो अिस तरह समझकर करेगा, वह अुसी वक्तसे धर्मको भिन्न अर्थमें और सच्ची तरहसे समझने लगेगा।

बच्चे, बूढ़े और रोगसे अपंग हुअे लोग श्रम न करें, तो अिसे कोअी रियायत न समझे। बच्चे मांमें शामिल हैं। अगर कुदरतका कानून न टूटे, तो लोग बूढ़े और अपंग न हों और बीमारी तो हो ही नहीं।

१६–९–'३०

२३

भिखारी साधु

शायद अैसा माना जायगा कि भिखारी शब्दका प्रयोग साधुका विरोधी है। मगर आजकलके साधुका मतलब है गेरुअे कपड़े पहननेवाला; फिर अुसका दिल गेरुआ हो, साफ हो या मैला हो। साधु शब्दका सच्चा अर्थ दिलका साधु या पवित्र ही है। पर अैसे साधु तो मुश्किलसे ही पहचाने जाते हैं। हां, भगवे कपड़ेवाले असाधु साधु भीख मांगते जरूर नजर आते हैं। अिसलिअे अैसे भिखमंगोंके लिअे भिखारी साधु शब्द अिस्तेमाल किया गया है। अैसोंके लिअे ही अेक भाअी लिखते हैं :

> "आप चरखेके जरिये कअी काम कर लेना चाहते हैं। सब धर्मवालोंकी अेकता पैदा करने और अूंचे-नीचे माने जानेवाले वर्णोंका भेदभाव मिटानेका काम भी चरखेके जरिये साधना चाहते हैं। यह सब बहुत अच्छा है। पर आजकल शक्ति होते हुअे भी आलसी हो जानेके कारण भीख मांगनेवालोंकी तादाद हिन्दुस्तानमें बढ़ गअी है। अिन्हें आप चरखा क्यों नहीं बताते? अैसी अेक संस्था क्यों नहीं बनाते, जिसमें कोअी भी भिखारी कुछ न कुछ मेहनत करके ही खा सके? अैसी संस्था हो तो जिनमें दान देनेकी शक्ति है, वे दान देनेके बजाय अिस तरहके आश्रमों पर चिट्ठी दें और अैसे लोगोंको वहीं काम और खुराक मिले।"

यह सूचना तो बढ़िया है, पर अिस पर अमल कौन करेगा? गरीब लोगोंमें चरखा फैलानेमें जितनी मुश्किलें आती हैं, अुससे कहीं ज्यादा मुश्किल भिखारी साधुओंमें चरखा फैलानेमें है। अिसमें धर्मकी भावना बदलनेकी बात आ जाती है। आज धनवान लोग अैसा मानते हैं कि झोलीवालेकी झोलीमें थोड़ेसे पैसे डाले कि परोपकार हो गया,

पुण्य हो गया ! अिन्हें कौन समझावे कि अैसा करनेमें भलाअीके बजाय बुराअी होती है, धर्मके नाम पर पाप होता है और पाखण्ड पनपता है ? छप्पन लाख साधु कहलानेवाले लोगोंमें सेवाभाव आ जाय और वे मेहनत करके ही रोटी खायं, तो हिन्दुस्तानको स्वयंसेवकोंकी जबरदस्त फौज मिल जाय। गेरुआ पहननेवालोंको यह बात समझाना नामुमकिन जैसा है।

अुनमें तीन तरहके लोग हैं। बहुत बड़ा भाग पाखण्डी है, जो सिर्फ आलसी रहकर ही मालपुअे खाना चाहता है। दूसरा वर्ग जड़ है। वह अैसा कुछ मानता है कि भगवे कपड़े और मेहनत दोनोंमें मेल बैठ नहीं सकता। तीसरा भाग बहुत छोटा है, जो सचमुच त्यागियोंका है, लेकिन जिन्हें लम्बे अर्सेकी आदतके कारण अैसा लगता है कि संन्यासी दूसरोंकी भलाअीके लिअे भी मेहनत नहीं कर सकते। अगर यह आखिरी छोटा हिस्सा मेहनतकी कीमत समझ ले और अितना भी समझ जाय कि पिछले युगोंमें भले कुछ भी हुआ हो, अिस जमानेमें तो संन्यासियोंको अुदाहरणके तौर पर भी मेहनत करना जरूरी है, तो दूसरे दोनों वर्गोंको भी समझाया जा सकता है। मगर अिस वर्गको समझाना बहुत ही कठिन काम है। यह काम धीरजसे और तभी होगा जब अिस वर्गको अनुभव होगा। अिसका मतलब यह हुआ कि जब चरखेका हिन्दुस्तानमें बोलवाला हो जायगा, तब यह वर्ग अुसकी शरणमें आयेगा। चरखेका बोलबाला यानी हृदय-साम्राज्य और हृदय-साम्राज्य यानी धर्मकी वृद्धि। धर्मकी वृद्धि होने पर संन्यासियोंका यह छोटासा वर्ग अुसे पहचाने बिना नहीं रह सकता।

जितनी मुश्किल संन्यासी वर्गको समझानेमें है, लगभग अुतनी ही धनिक वर्गको समझानेमें है। धनी लोग अपना धर्म समझ जायं, आलस्यको अुत्तेजन न दें और भिखारीको खाना न देकर काम ही दें, तो चरखेका बोलबाला आज ही हो जाय। लेकिन अुनसे अैसी अुम्मीद कैसे रखी जा सकती है ? धनी लोग खुद ज्यादातर और आम तौर पर आलसी होते हैं; और आलस्यको अुत्तेजन तो देते ही हैं। अुनसे जाने-अनजाने भी आलसी भिखमंगोंको बढ़ावा मिल जाता है। अिस तरह

लेखकने सुझाव तो अच्छा ही रखा है, लेकिन यह नहीं सोचा कि अुस पर अमल करना कितना कठिन है। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं कि काम कठिन है, अिसलिअे हम कोशिश ही न करें। कोशिश तो हमें करते ही रहना चाहिये। अेक भी धनवान समझकर आलसीको दान देना छोड़ दे और अेक भी भिखारी साधु, जो अपंग नहीं है, मेहनत किये बिना न खानेकी प्रतिज्ञा कर ले, तो अुतना ही हिन्दुस्तानका फायदा है। अिसलिअे जहां जहां अैसी कोशिश हो सके, वहां वहां करनी ही चाहिये। मुश्किलोंको ध्यानमें रखनेसे अितना ही होगा कि फौरन फल न मिलने पर निराशा न होगी और हम यह न मान बैठेंगे कि कोशिश करना ही बेकार है।

नवजीवन, १-८-'२६

२४

'साधुओं' की तकलीफ

पूछनेवालेका अेक सवाल यह है :

"साधुओंका जुल्म आप जानते हैं? हैदराबादमें अेक साधुने जुल्मसे रुपया अैंठनेकी कोशिश की। गुजरातके गांवोंमें भी अैसे साधु गांव गांव जाकर बड़ा दुःख देते हैं और गरीब लोगोंसे जबरदस्ती करके सौ-पचास रुपयेकी रकम अपने खाने — मिठाअी — के लिअे निकलवा लेते हैं। यह तो अच्छा हुआ कि हैदराबादमें पुलिस थी। गांवोंमें पुलिस कहांसे लावें? अिस बारेमें गांवोंके लोगोंको जरूर लिखिये कि वे अैसे साधुओंसे डरें नहीं, और अुन्हें रुपया देने या खिलानेमें कुछ भी पुण्य नहीं है।"

अिस तरह लोगोंको सतानेवाले साधु कहलानेके हकदार नहीं हैं। भेससे भुलावेमें आनेवाला यह देश गेरुअे कपड़े पहननेवाले या सिर्फ लंगोटीसे काम चला लेनेवाले लोगोंके चक्करमें आकर अुन्हें साधु

समझकर पूजता है। भेससे कोअी साधु नहीं हो जाता। साधुके भेसमें हजारों असाधु अिस देशमें भटकते फिरते हैं। साधुके रूपमें दीखने-वालों या सचमुच असाधु जाहिर हो जानेवालोंसे गांवोंके लोगोंको डर जानेका कुछ भी कारण नहीं। गांवोंके लोगोंमें साधुको पहचाननेकी शक्ति आनी चाहिये और दुष्ट लोगोंका डर छोड़ना चाहिये। वहम और डर अिन दोनों दुश्मनोंको गांवसे निकाल बाहर करनेके लिअे पढ़े-लिखे वर्गको गांवमें घुसनेकी जरूरत है। सरदार वल्लभभाअीने सारे हिन्दुस्तानको गांवोंमें घुसनेका आम रास्ता बताया है। अूपरके जैसे बहुतेरे काम अिस समयके रचनात्मक कामोंके सिलसिलेमें बारडोलीमें होंगे और जनता नये नये पदार्थपाठ सीखेगी।

नवजीवन, २-९-'२८

२५

दीक्षा कौन ले?

जावरा रियासतमें गुलाबबाअी नामकी अेक ओसवाल सुहागिन है। अुसने हिन्दीमें अेक परचा छपवाकर बंटवाया है। अुस परसे मालूम पड़ता है कि अुसके पतिने, जो छोटी अुम्रका है, दीक्षा लेनेके अिरादेसे घर छोड़ा है और अपनी सोलह बरसकी स्त्री पर अिस तरहका पत्र लिखा है : "करीब दो सालसे मेरा दीक्षा लेनेका विचार है। मैं कुटुम्बकी आज्ञा बराबर मांग रहा हूं। यहां आनेके बाद भी पांच-छह पत्र लिखे हैं, मगर अिजाजत नहीं मिली। अब मैंने खुद ही दीक्षा लेनेका विचार किया है।" अिस पतिकी साठ वर्षकी बूढ़ी मां है। जिन सज्जनने अिस बारेमें मेरे पास पत्रिका भेजी थी, अुनसे और हालात पूछने पर नीचेकी बातें मालूम हुअी हैं। पत्रमें लिखा है : "गुलाब मामूली पढ़ी-लिखी है, हिन्दी लिखना-पढ़ना जानती है। अुसने अपने भाव बताये। अुनके अनुसार अुसके मित्रने पत्रिका लिख दीं और अुसने छपवा दी।

वह अपने भाअीके साथ जाकर खुद ही छपवा लाअी। पति साधारण हिन्दी लिखना-पढ़ना जानता है। कुटुम्बकी हालत नाजुक है। अभी तक अुसे किसीने दीक्षा नहीं दी है।"

मुझे अुम्मीद है कि अिस नौजवानको कोअी दीक्षा नहीं देगा। अितना ही नहीं, वह खुद अपना धर्म समझ जायगा। यह शोभाकी बात हो सकती है कि छोटी अुम्रमें बुद्ध या शंकराचार्य जैसे ज्ञानी दीक्षा ले लें। पर हरअेक नौजवान अैसे महापुरुषोंकी नकल करने लग जाय, तो यह धर्मके लिअे और अपने लिअे शोभाके बजाय शर्मकी बात होगी। आजकल ली जानेवाली दीक्षामें कायरताके सिवा और कोअी बात देखनेमें नहीं आती और अिसीसे साधु भी तेजस्वी होनेके बजाय ज्यादातर हम-जैसे ही दीन और अज्ञानी होते हैं। दीक्षा लेना बहादुरीका काम है और अुसके पीछे पिछले जन्मके बड़े संस्कार या अिस जिन्दगीमें मिला हुआ अनुभवज्ञान होना चाहिये। बूढ़ी मां और जवान स्त्रीका कुछ भी विचार किये बिना दीक्षा लेने-वालेमें अितना अधिक वैराग्य होना चाहिये कि आसपासका समाज अुसे समझे बिना न रहे। अैसी कोअी भी ताकत अिस दीक्षा लेनेवाले नौजवानमें नहीं दीखती।

लेकिन दीक्षा लेनेके लिअे अुत्सुक नौजवान दीक्षाका अधिक विस्तृत अर्थ क्यों नहीं करते? अभी तो गृहस्थधर्म पालनेवाले भी बहुत थोड़े देखे जाते हैं। घर बैठे दीक्षा-जैसी जिन्दगी बितानेमें कुछ कम पराक्रम नहीं चाहिये, और सच्ची कसौटी तो अुसीमें होती है। बहुतसे दीक्षा लिये हुओंको मैं जानता हूं, और वे बेचारे सरलतासे मंजूर करते हैं कि न अुन्होंने प्रमादको जीता और न पांच अिन्द्रियोंको। दीक्षा लेकर अुन्होंने सिर्फ अपने खाने-पहननेकी सहूलियत बढ़ाअी है। सन्तोषके साथ, पवित्र रहकर, सचाअीको रखते हुअे, गरीबीसे घरका काम चलाना, पराअी स्त्रीको मां-बहन समझना, अपनी स्त्रीके साथ भी मर्यादामें भोग भोगना, शास्त्रों वगैराका अध्ययन करना और भरसक देशकी सेवा करना कोअी छोटी-मोटी दीक्षा नहीं है। दीक्षाका

अर्थ है आत्मसमर्पण। आत्मसमर्पण बाहरी ढोंगसे नहीं होता। यह मनकी चीज है और अिसके सिलसिलेमें कुछ बाहरी आचार भी जरूरी हो जाता है, लेकिन वह शोभा तभी पाता है, जब वह भीतरी सफाअी और भीतरी त्यागकी सच्ची निशानी हो। अुसके बिना वह सिर्फ बेजान चीज है।

नवजीवन, २८-८-'२७

वर्ण-व्यवस्था

दूसरा भाग

जाति और कुरीतियां

१

जाति-बंधन

जातिको मैंने संयमके बढ़ानेमें मदद देनेवाली माना है। पर आजकल जाति संयमके रूपमें नहीं, बल्कि बंधनके रूपमें पाअी जाती है। संयम मनुष्यको शोभा देता है और स्वतंत्र करता है; बंधन बेड़ी बनकर फिक्रमें डालता है। आजकल जातिका जो अर्थ किया जाता है, वह कोअी चाहने लायक या शास्त्रीय अर्थ नहीं है। आज जिस अर्थमें वह अिस्तेमाल होता है, अुस अर्थमें जाति जैसा शब्द ही शास्त्र नहीं जानते। वर्ण हैं और चार ही हैं। लेकिन जातियां बेशुमार हैं और अुनमें भी दल बन गये हैं, जिनमें बेटी-व्यवहार बन्द होता जा रहा है। यह अुन्नतिकी नहीं, बल्कि अवनतिकी निशानी है।

ये विचार नीचेके पत्रसे पैदा हुअे हैं :

> "आप जैसे लोग तो सब जातियोंको अेक होनेका अुपदेश देते हैं; अिधर मेरी जातिमें, जो लाड जातिके नामसे पहचानी जाती है, अध्यक्ष जैसे मामूली ओहदेके बारेमें जाति-भाअियोंका मतभेद हो गया है, और वह यहां तक कि वे जातिकी सभामें हाथापाअी करनेसे भी बाज नहीं आते। आप जैसोंको अिस मामलेमें तकलीफ देनेकी बिलकुल अिच्छा नहीं है। फिर भी अेक जातिमें कुटुम्बका झगड़ा और आपसकी मारपीट बन्द होना अच्छा है। अिसलिअे मेरी नम्र प्रार्थना है कि आप अपनी राय अिस बारेमें 'नवजीवन' के जरिये लाड जातिके सब भाअियोंको बतानेकी कृपा करें।
>
> "हमारी जातिमें खंभाती, आग्री, दमणी, पेटलादी, सूरती और दूसरे लाड भाअी शामिल हैं। अिनमें से पहले चारमें बेटी-व्यवहार होता है। पिछले बीस-तीस वर्षसे अध्यक्षका चुनाव पहली चार जातियोंमें से होता आया है। अिस सालकी जाति-

सभामें अिन चार जातियोंकी तरफसे अेक अैसा प्रस्ताव आया था कि अध्यक्ष और मंत्री होनेका हक अुन्हीं लोगोंको है, जो बेटी-व्यवहारको और बम्बअीकी लाड जातिकी सत्ताको सर्वोपरि मानते हों। अिस प्रस्तावसे सूरती लाड भाअियोंकी भावनाओंको सख्त चोट लगी; और लगभग ढाअी सौसे तीन सौ आदमियोंके दस्तखतोंसे अेक प्रार्थनापत्र कमेटीको भेजा गया। लेकिन कमेटी अभी तक किसी तरहका फैसला नहीं कर सकी है। अिस समयका वातावरण अितना ज्यादा खराब है कि शायद जातिमें दल बन जायं और सम्भव है कि अदालतमें भी मामला चला जाय।"

यह खबर सही हो तो दुःखकी बात है। अिसमें अध्यक्ष और मंत्रीके ओहदेके लिअे लड़ाअी कैसी? सूरती, आग्री, दमणी वगैरा भेद कैसे? लाड युवक-मंडलकी सभामें मैं जब गया था, तो मुझ पर अच्छा असर पड़ा था। अध्यक्षपद सेवाके लिअे होता है, मानके लिअे हरगिज नहीं। मंत्री तो समाजका नौकर है। अिस जगहके लिअे होड़ हो, तो भी मीठी ही होनी चाहिये। मुझे अुम्मीद है कि अूपरका झगड़ा दोनों पक्ष मिल-जुलकर मिटा लेंगे। सभी वैश्य मिलकर अेक जाति क्यों न बन जायें? अैसा धर्म कहीं भी नहीं है कि वैश्य जातिमें लड़की दी-ली नहीं जा सकती। मैं अगर अुपजातियोंको किसी हद तक मानता हूं, तो वह सिर्फ समाजके सुभीतेके लिअे। जब अूपर जैसे किस्सोंका अनुभव होता है, तब अैसा ही लगता है कि अिरादतन् अिन बन्धनोंको काटकर अुनसे छूटना और दूसरोंको छुड़ाना चाहिये।

नवजीवन, ३-५-'२५

२

धर्मके नाम पर लूट

लाड जातिमें जो आपसी झगड़ा चल रहा है, अुसके बारेमें मेरे पास अेक लम्बा पत्र आया है। लिखनेवालेने शुद्ध प्रयत्न करके बहुतसी जानकारी दी है और बताया है कि समझौतेके लिअे जो अुपाय हो सकते हैं वे सब किये गये हैं। मैं यह माननेको तैयार हूं। मगर मेरा विचार लाड जातिके बारेमें कुछ लिखने या सुझानेका नहीं है। हां, अुस परसे आनेवाले विचार सारे हिन्दू समाजके सामने रखनेका अिरादा है।

अेक तरफ हिन्दू-धर्मको बचानेके लिअे अच्छे संगठन हो रहे हैं; दूसरी तरफ हिन्दू-धर्ममें जो कमजोरियां घुस गअी हैं, वे अुसे अन्दरसे कुतर रही हैं। यानी, जैसे अेक मोटी लकड़ीके गर्भको भीतरसे कीड़ा कुतर कर खा रहा हो, तो अुसे अूपरसे ढांकने या रोगन लगाने पर भी आखिर वह लकड़ी खायी ही जायगी, वैसे ही हिन्दू जातिके गर्भमें जो कीड़ा पैठ गया है और अुसे खाये जा रहा है, अुसका नाश न किया जायगा तो बाहरसे हिन्दू-धर्मका कितना ही बचाव क्यों न किया जाय, अुसका नाश अवश्य होगा।

वर्णके बन्धनके नाम पर वर्णका संकर हो गया है। वर्णकी मर्यादा चली गअी है, अुसकी अतिशयता रह गअी है। वर्णका जो बन्धन धर्मके बचावके लिअे था, वह अब वक्र होकर धर्मको कुतर रहा है। वर्ण चार होनेके बजाय बेशुमार हो गये हैं। वर्ण मिटकर जातिके बाड़े बन गये हैं। अुन बाड़ोंके भीतर बन्द होकर हम लावारिसोंकी तरह वैसे ही कैदी बन गये हैं, जैसे लावारिस ढोरोंको कांजी-हाअुसमें कैद कर दिया जाता है। वर्ण जनताके पालनेवाले थे; जातियां जनताका नाश करनेवाली हो गअी हैं। हिन्दू जनताकी या हिन्दुस्तानकी सेवा करनेके बजाय हम अपने बाड़ोंकी यानी अपनी बेड़ियोंकी रक्षा करनेमें ही फंसे रहते हैं; और अुसके सिलसिलेमें अुठनेवाले सवालोंका फैसला

करनेमें ही हमारा वक्त, हमारी बुद्धि और हमारा रुपया खर्च होता है। पारधी छत्ता तोड़नेको सामने खड़ा है और बेवकूफ शहदकी मक्खियां अेक-दूसरेके घर पर कब्जा करनेके लिअे पंचायतें कर रही हैं! जहां बीसा-दस्साका फर्क ही मिटा देना है, वहां यह सवाल ही कहां रहता है कि बीसे बड़े या दस्से? जहां हिन्दुस्तानकी सारी वैश्य जातिको अेक करनेकी आवश्यकता है, वहां दस्से-बीसे, मोढ़-लाड, हालारी-घोघारीके भेदों और अुनके आपसी झगड़ोंकी गुंजाअिश ही कहां है?

वर्ण धन्धेकी वजहसे थे और जातिका दारमदार सिर्फ रोटी-बेटी-व्यवहार पर है। जहां तक मैं रोटी-बेटी-व्यवहारकी मर्यादा रखूं, वहां तक कलालकी दुकान रखूं तो क्या, शमशेर बहादुर हो जाअूं तो क्या, और विलायती डिब्बोंमें बन्द किया हुआ गायका मांस बेचूं तो क्या? यह सब कुछ करते हुअे भी मैं वैश्य जातिमें पूजा जा सकता हूं। मैं अेक पत्नीके साथ अपना धर्म पालूं या कअी सुंदरियोंके साथ लीला करूं, अुससे मेरी जातिको कोअी सरोकार नहीं! अितना ही नहीं, यह सब होते हुअे भी मैं जातिका सेठ रह सकता हूं, जातिके लिअे नयी स्मृतियां बना सकता हूं और जातिसे अिनाम-अिकराम भी ले सकता हूं! जाति अिस बातकी चौकीदारी तो जरूर करती है कि मैं कहां खाता हूं, अपने बच्चोंको कहां ब्याहता हूं; लेकिन मेरे चाल-चलन पर निगाह रखना जातिका काम नहीं! मैं विलायत हो आया होअूं, तो कन्याकुमारीके मन्दिरके भीतरी हिस्सेमें नहीं जा सकता; लेकिन मैं खुले तौर पर व्यभिचार करता होअूं, तो भी अुस भीतरी हिस्सेमें जानेसे मुझे कोअी रोक नहीं सकता!

अिस चित्रमें कहीं अतिशयोक्ति नहीं है। यह धर्म नहीं, पापकी हद है। अिसमें वर्णका बचाव नहीं, नाश है। अगर यह पाप दूर न हुआ तो मैं, जो वर्णाश्रमको बचानेकी कोशिश कर रहा हूं, वर्णकी रक्षा नहीं कर सकूंगा। अिसमें तो वर्णके नाम पर ज्यादती ही दिखाअी देती है; ज्यादतीका नाश होनेके बजाय वर्णका ही नाश हो जानेका डर है।

अब यह देख लें कि अिन बेशुमार जातियोंकी रक्षा किस तरह होती है। अहिंसा-प्रधान धर्म जातिका बचाव हिंसासे करता है। जिसने जातिके बनावटी और बेजा बन्धन तोड़े हों, अुसे समझाने और अुसकी 'भूल' बतानेकी कोशिश नहीं की जाती; झटपट अुसे जातिसे बाहर निकाल दिया जाता है। यह जाति-बाहर करना क्या, सब तरहसे सताना है; अुसका खाना बन्द, अुसका बेटी-व्यवहार बन्द, अुसका श्मशान-व्यवहार बन्द। यह सजा जाति-बाहर किये हुअे आदमीके वारिसों पर भी अुतरती है! अिसीका नाम है चींटी पर पन्सेरी; या आजकलकी भाषामें कहें तो अेक तरहकी डायरशाही। अिस तरहकी तकलीफसे हजार-दो हजार आदमियोंकी जातियां टिकनेके बजाय मिटनेवाली ही हैं। अुनका नाश होना भी चाहिये। लेकिन जबरदस्तीसे किया हुआ नाश नुकसान पहुंचाता है। नाश खुशीसे किया गया हो, तभी वह समाजका बल बढ़ाता है।

अच्छेसे अच्छा अुपाय तो यह है कि छोटी छोटी जातियोंकी पंचायतें अिकट्ठी होकर अेक जाति बन जायें, और यह बड़ा संघ दूसरे संघोंके साथ मिल जाय; और बादमें अिसे चारमें से अेक वर्णमें जगह मिल जाय। मगर आजकलकी शिथिलतामें अैसा सुधार जल्दी होना नामुमकिन है।

तो धर्म पर चलना जितना कठिन है, अुतना ही सहल भी है। जैसे हरअेक संघ धर्मको बढ़ा सकता है, वैसे हरअेक आदमी भी बढ़ा सकता है। व्यक्ति जिसे धर्म समझता है, अुस पर निडर होकर अमल करे। फिर अुसे जाति-बाहर कर दिया जाय, तो भी अुस बारेमें बेफिकर रहे और जातिकी तीन सजाओंको विनयके साथ माथे पर चढ़ाकर बन्धनसे छूट जाय। जातिमें भोजन करनेसे कोअी लाभ नहीं। बहुत दफा तो न करनेमें फायदा ही होता है। मृत्यु-भोजनको तो मैं पाप ही समझता हूं। लड़केके लिअे लड़की और लड़कीके लिअे लड़का अुसी जातिमें न मिले तो कोअी चिन्ताका कारण नहीं। जिसे सजा दी गअी है, अुसे वह सजा नहीं मिलती, क्योंकि वह अुपजातियोंकी हस्तीमें मानता ही नहीं। कन्या या वर योग्य हो, तो दूसरे संघके सुधारकोंमें से

जोड़ी मिलनेमें अड़चन बिलकुल नहीं होगी। लेकिन हो तो अुसे सहना ही धर्म है। चरित्रवान और संयमी व्यक्ति अैसी तकलीफोंको तकलीफ नहीं मानता। वह अुन्हें खुश होकर सहता है। मरनेके समय जातिकी तरफसे मदद न मिले तो अिसमें भी दुःख क्या? दूसरे मददगार मिल जायेंगे। मौतगाड़ी* के बारेमें तो मैं लिख ही चुका हूं। अुसे काममें लेनेसे थोड़ी मददसे काम चल सकता है। और जिसे अुतनी मदद भी न मिले, वह मजदूर कर ले। जिसके पास मजदूरके लिअे भी दाम न हों, वह यह भरोसा रखे कि जो भगवानका दास है, अुसके लिअे भगवान कहीं न कहींसे सहायता भेज ही देगा। सजाका डर छोड़ना सत्याग्रह है। जैसे सरकारसे लड़नेके लिअे सत्यग्रह सुनहरा हथियार है, वैसे ही जातिकी सरकारसे लड़नेके लिअे भी वह सुनहरा हथियार है। दोनों तकलीफें अेकसी हैं। अुनकी दवा भी अेक ही है। जुल्मकी दवा सत्याग्रह है। हिन्दू-धर्मकी — हरअेक धर्मकी — रक्षा सिर्फ सत्याग्रहसे ही हो सकती है।

हरअेक धर्मप्रेमीको मेरी विनयके साथ सलाह है कि अुसे जातियोंकी तरह तरहकी खटपटमें न पड़कर अपने फर्जमें पक्का होना चाहिये। फर्ज अपने धर्म और देशके बचावका है। धर्मका बचाव छोटी छोटी जातियोंका बेजा बचाव करनेमें नहीं, धर्म पर चलनेमें है। धर्मके बचावका मतलब है सभी हिन्दुओंका बचाव। सभी हिन्दुओंका बचाव खुद चरित्रवान बननेमें ही है। चरित्रवान बननेका अर्थ है सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य वगैरा व्रतोंको पालना, निडर बनना यानी किसी भी मनुष्यसे न डरना, अीश्वर पर भरोसा रखना, अुसीसे डरना, यह जानकर कि वह हमारे सब कामों और विचारोंको देखनेवाला है मलिन विचार करनेसे भी डरना, जीवमात्रकी सहायता करना, पराये धर्मवालेको भी दोस्त समझना, दूसरोंकी भलाअीमें अपना समय बिताना, वगैरा वगैरा। अुपजातियोंको तभी निभाया जा सकता

---

* देखिये अिस भागका २२ वां लेख: 'महामारी और मौतगाड़ी'।

है, जब अुनका काम धर्म और देशका बल बढ़ानेवाला हो। जो जाति सारी दुनियाका अिस्तेमाल अपने लिअे करेगी अुसका नाश होगा। जो जाति अपना अुपयोग जगतकी भलाअीके लिअे होने देगी वह जिन्दा रहेगी।

नवजीवन, ७-६-'२५

३

ये बाड़े तोड़िये

[मोरवीके राजा और वहांकी मोढ़ जाति द्वारा किये गये स्वागतके जवाबमें दिया हुआ भाषण। —प्रकाशक]

महाराजा साहब, राज्यकी प्रजा और मोढ़ जातिने मेरा और मेरे साथियोंका जो स्वागत किया और मानपत्र दिया, अुसके लिअे मैं सबका हृदयसे आभार मानता हूं। मोढ़ भाअियोंसे मुझे अितना कहना चाहिये कि आपसे मानपत्र लेनेका मुझे कुछ भी हक नहीं। मुझे सपनेमें भी खयाल नहीं कि मोढ़ जातिकी अेक जातिके तौर पर मैं कोअी भी सेवा कर सका हूं। कितने ही भाअी अैसा माननेवाले भी हैं कि मैंने मोढ़ जातिको नुकसान भले ही पहुंचाया हो, पर सेवा कभी नहीं की। घड़ी भरके लिअे यह अिलजाम मान भी लूं, तो भी यह मानपत्र आपकी अुदारता जाहिर करता है। पर मुझे अितनी-सी अुदारतासे सन्तोष नहीं होता। क्योंकि यह अुदारताकी निशानी है, तो भी मानपत्र लेनेवाले और देनेवालोंमें जिस तरह यह खानगी समझौता रहता है कि मानपत्र लेनेवाला जो काम कर रहा है अुसके लिअे देनेवालोंका आशीर्वाद और सम्मति है, अुस तरहका समझौता हमारे बीच नहीं है। अिसलिअे भी मुझे मानपत्र लेनेमें संकोच होता है।

आपकी अिस छोटीसी जातिके बारेमें जो अितना कहता हूं अुसमें कुछ मर्म है, क्योंकि मैं यह माननेवाला रहा हूं कि अिन छोटे छोटे

बाड़ोंका नाश करना ही चाहिये। मुझे अिस बारेमें शक नहीं कि हिन्दू-धर्मके भीतर जातियोंके लिअे जगह नहीं है। और यह मैं मोढ़ या दूसरी जो भी जातियां यहां हों अुन्हें ध्यानमें रखकर कहता हूं। सच्चे शास्त्रोंमें जातिके बारेमें कोअी भी आधार नहीं है। आधार सिर्फ चार वर्णोंके लिअे है। भगवानने केवल चार वर्णोंकी ही रचना की है। वर्ण-धर्ममें जातिकी गंध तक नहीं है।

आप सबको — मोढ़ जातिके जरिये — सुनाना चाहता हूं कि जातिके बाड़ोंको भूल जाअिये। आज जो जातियां हैं अुनका आहुतियोंके रूपमें अुपयोग कीजिये और नयी न बनने दीजिये। अिन जातियोंका यज्ञ कीजिये और अिनमें कोअी संयमकी बात हो तो अुसका पालन कीजिये। आप अिन छोटे बाड़ोंके खड्डोंमें पड़े रहेंगे तो बदबू अुठेगी। डॉक्टर खड्डे भर देनेकी सलाह देते हैं। जिस तरह अुनमें से बदबू अुठती है, मच्छर पैदा होते हैं और वे घातक साबित होते हैं, अुसी तरह यह समझ लीजिये कि ये जातिके बाड़े भी मनुष्यके लिअे घातक हैं। यह समझ लीजिये कि अीश्वर कभी अैसी घातक रचना नहीं कर सकता।

मैं अपने अनुभवकी बात कहता हूं। आप मानेंगे तो सुखी होंगे। समय अपना काम करता रहता है। समयके काममें बाधा डालना हो तो भले ही डालिये, पर यह मान लीजिये कि डालना फिजूल है। अगर अिन बाड़ोंके बचावमें हम नाहक वक्त गंवाया करेंगे, तो वह सूरजके सामने धूल अुड़ाकर अपनी आंखोंमें डालनेके खेलकी तरह होगा। आपने मुझे मानपत्र न दिया होता तो ये बातें सुनानेका दिल न होता, मौका न मिलता। अिस चीजको छोटी न मानिये। बरसोंसे हम वहम और अज्ञानमें पड़े हैं। अिस वहम और अज्ञानको ज्ञानका रूप न दीजिये। आज दुनियामें जुदा जुदा धर्मोंमें मुकाबला हो रहा है; और अिसको अुदार भावसे देखेंगे तो जान पड़ेगा कि ये जातियां तरक्कीको, धर्मको, स्वराज्यको और रामराज्यको — जिसे मैं रट रहा हूं अुस रामराज्यको — रोकनेवाली हैं। मैं आपसे पूछता हूं कि मोढ़ जातिमें अैसा क्या धरा है कि अुसीके गीत हम गाया करें?

जहां तहां हमारे आचार-विचारमें विरोध देखा जाता है। हमारे गीतोंका अर्थ अलग है और हमारा आचरण अलग है। यह तो सांप चला गया और लकीर रह गअी वाली बात हुअी। आचार और विचारमें मेल बैठानेकी जबरदस्त कोशिश कीजिये। आपने मानपत्र दिया है, अुसके जवाबमें अिस कोशिशकी मैं आपसे मांग करता हूं। मैंने जिस खानगी समझौतेकी बात कही है, अुसे ही आप मान लेंगे तो मुझे लगेगा कि मेरा आपसे मानपत्र लेना और अिस जातिमें जन्म लेना सार्थक हुआ।

मेरा तो आचार और विचारकी अेकताका यज्ञ चल रहा है और मेरे अिस यज्ञके कारण मोढ़ जातिने मेरा बहिष्कार किया है; हालांकि बादमें मोढ़ोंने देख लिया कि मैं बहिष्कारके लायक नहीं, क्योंकि मैंने जातियोंसे फायदा अुठानेका कभी विचार तक नहीं किया है। मैं तो अिन बाड़ोंको तोड़नेकी अपनी कोशिशें तेज करना चाहता हूं। आपको पता न होगा कि मैंने अपने अेक लड़केका ब्याह जातिसे बाहर किया है। और अिसमें मुझे कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। मेरे लड़केको अेक भक्त वैष्णव कुटुम्बकी लड़की मिली और अुसके लिअे मेरा लड़का मुझे धन्यवाद देता है। अिस तरह यह कहा जा सकता है कि मैंने तो दूसरी जातिमें से अेक जवाहर चुराया है। छोटी छोटी जातिवालोंसे मैं कहता हूं कि तुम्हारी लड़कियां कुंवारी रहती हों तो मुझे सौंप देना। मैं दूसरी जातिके अच्छे सुशील लड़कोंके साथ तुलसीके पत्ते या सूतके धागेसे अुनका ब्याह कर दूंगा। मैंने अछूतकी लड़कीको गोद लिया है, फिर भी दूसरी जातिके लोग अपनी लड़की देनेमें संकोच नहीं करते, तो आपको किसलिअे डर हो? मैं तो तीन दिन बाद अेक मोढ़ कन्याके साथ अपने लड़केकी शादी करनेवाला हूं। अिस तरह मेरा काम चलता रहता है, कोअी दिक्कत नहीं आती।

अिस तरह मोढ़ जातिके बहाने मैं सब बाड़ेवालोंसे कहना चाहता हूं कि बाड़े तोड़िये। अठारह वर्ण तो आम लोगोंकी कहावतमें हैं, गुण और कर्मके अनुसार तो चार ही वर्ण हैं। खाने-पीनेके आचार अस्पृ-

श्यताके विषय हैं। वर्ण तो अेक अैसा सुन्दर पेड़ है, जिसकी छायामें बैठकर मनुष्य-जाति अपने लिअे छाया और बल पा सकती है। वर्ण-व्यवस्था संयमका धर्म है। अिसमें रुपये-पैसेका खयाल नहीं; धर्म पर चलनेका ध्येय है। अृषि-मुनियोंने अिसकी कल्पना और रचना धर्म पर चलनेके राजमार्गके तौर पर की है। अिसके बजाय अब यह हमारे स्वार्थों, हमारे दोषों और हमारे भोगोंको बल पहुंचानेका जरिया बन गअी है। अब शुद्ध वर्ण-व्यवस्था कायम करनेकी कोशिश कीजिये।

नवजीवन, २९-१-'२८

४

सत्याग्रह और जाति-सुधार

सत्याग्रहका अुसूल जैसे जैसे समझमें आता जा रहा है, वैसे वैसे अुसके नये अिस्तेमाल होते जाते हैं। वह सिर्फ सरकारका सामना करनेके लिअे ही नहीं, बल्कि जाति और कुटुम्बमें भी काममें लिया जाता दीख रहा है। अेक जातिमें बेटी बेचनेका घातक रिवाज है। अेक नौजवानको अुसे रोकनेकी प्रेरणा हुअी है। यह सवाल अुठा है कि अुसे क्या करना चाहिये। सत्याग्रहका सौम्य अंग असहयोग है। अिस जातिमें कन्या-विक्रय रोकनेका अिस नौजवानका अिरादा हुआ है। अिरादा शुद्ध है, लेकिन वह असहयोग करे या नहीं, करे तो किस तरह करे और किसके साथ करे? अिस मामलेमें निश्चित राय दे सकना कठिन है। लेकिन कुछ सामान्य नियम तो अैसे सभी मामलोंके लिअे बताये ही जा सकते हैं।

पहले तो असहयोग अेकाअेक किया ही नहीं जा सकता। मुद्दतसे चले आ रहे बुरे रिवाज पलभरमें नहीं मिटाये जा सकते। सुधारका अेक पैर है, अिसलिअे वह लंगड़ाता चलता है। जो धीरज खो बैठे वह शुद्ध असहयोगी नहीं बन सकता। पहली सीढ़ी यह है कि

सुधारकको आम लोगोंकी राय अपने पक्षमें करनी चाहिये। जातिके सयानोंसे मिलना चाहिये, अुनकी दलीलें सुननी चाहिये। सुधारक बेचारा गरीब आदमी हो, अुसे कोअी पहचानता न हो और सयाने अुसे दाद न दें, तब वह क्या करे? अैसा गरीब हो तो अुसे जान लेना चाहिये कि वह सुधारका जरिया बननेके लिअे पैदा नहीं हुआ है। हम सब चाहते हैं कि दुनियासे झूठ अुठ जाय, पर झूठे आदमियोंको कौन समझावे? यह सुधार बहुत जरूरी है, फिर भी हम धीरज रखकर क्यों बैठे हैं?

हकीकत यह है कि सुधारकमें अहंता न होनी चाहिये। सारी खराबियोंकी जिम्मेदारी हम क्यों लें? हम अितनेसे संतोष मान लें कि हम खुद सच बोलते हैं और सच्चा काम करते हैं। अिसी तरह जातिकी सड़ांधके बारेमें भी हम अपने आचार-विचारको साफ रखें और दूसरोंके बारेमें तटस्थ रहें।

'हुं करुं, हुं करुं, अे ज अज्ञानता,
शकटनो भार ज्यम श्वान ताणे।'*

यह पद रटते हुअे अिसके अनुसार निरभिमान रहना चाहिये।

जब निरभिमान रहते हुअे भी यह मालूम हो कि हम पर जिम्मेदारी है, तो हम पर अेक खास फर्ज आ पड़ता है। जैसे, जातिके महाजन या पंच निरभिमान होनेका दावा करके मौजूदा गन्दगीको दरगुजर नहीं कर सकते; क्योंकि सेठ या महाजन बनकर वे जातिकी नीतिके रक्षक बने हैं। अेक भी लड़की बेची गअी, तो अुस निर्दोष बच्चीका शाप अुन्हींको लगेगा।

पर सेठ और महाजन अिस सड़ांधको दूर करनेके लिअे कुछ भी नहीं करते। अितना ही नहीं, वे खुद ही बिक्री करते हैं। तब जातिका बेचारा यह गरीब सदस्य क्या करे? वह खुद साफ हो गया

---

* गाड़ीके नीचे चलनेवाला कुत्ता जैसे समझता है कि वही गाड़ी खींच रहा है, वैसे ही 'मैं करता हूं, मैं करता हूं' कहना अपना अज्ञान जताना है।

है। जातिके सब मुखियोंसे मिल चुका है। अुन्होंने अिसे हर जगहसे दुतकार कर कुत्तेकी तरह बाहर निकाल दिया है। अुस पर गालियोंकी वर्षा हुअी है। बेचारा नाअुम्मीद होकर थका और अुदास घर आया है। अूपर आकाश और नीचे धरतीके सिवा और कुछ नजर नहीं आता। अब अीश्वर ही अुसकी पुकार सुननेवाला है। पर अभी सीढ़ी तो पहली ही है। तपस्याके लायक बननेसे पहले अुसकी जो कसौटी होनी थी वह हुअी है। अब वह अुस आवाजको सुन सकता है, जो अुसके भीतरसे अुठती है। वह अन्तर्यामी या घट-घटमें रहनेवालेसे पूछता है : 'मैंने अपमान सहा है, फिर भी मैं अपने भाअियों पर प्रेम रखता हूं? मैं अुनकी सेवा करनेको तैयार हूं? मैं अुनकी जूतियां खाना भी बरदाश्त कर सकूंगा?' अगर अन्तर्यामी अिन सब सवालोंका जवाब 'हां' में दे, तो मानना चाहिये कि वह दूसरा कदम अुठानेको तैयार हुआ है।

अब वह प्यारके साथ असहयोग शुरू कर सकता है। प्रेममय असहयोगका मतलब हकोंको छोड़ना है, फर्जको छोड़ना नहीं। जातिमें अिस गरीब सेवकके हक क्या हैं? जातिमें खाना और जातिमें ब्याहना। ये दोनों हक वह नम्रताके साथ छोड़ दे, तो अुसे खुद जो कुछ करना था वह कर चुका। पंचायत अुसे कांटेकी तरह निकाल फेंके, घमण्डके नशेमें चूर पंच यह समझकर कि 'चलो, अेक थाली कम हुअी, लड़की मांगनेवाला अेक कम हुआ,' अुसका नाम ही बहीखातेमें से निकाल डालें, तो भी वह गरीब सेवक निराश न होकर भरोसा रखे कि अुसके बोये हुअे छोटेसे बीजमें से बड़ा भारी पेड़ खड़ा होगा। अपना पूरा फर्ज अदा करनेके बाद — अुससे पहले नहीं — वह गा सकता है कि 'मुझे काम करनेका हक है, फल पानेका कभी नहीं।'

अब यह गरीब तपस्वी वनवासी हो गया। अुसने भीष्मके जैसी प्रतिज्ञा की है। वह ब्रह्मचारी हो तो जातिका मैल धुलने तक वह ब्रह्मचारी रहेगा, और विवाहित हो तो भी अपनी स्त्रीके साथ सिर्फ मित्रताका बर्ताव रखेगा। अुसके लड़के हों तो वह अुन्हें भी ब्रह्मचर्यसे रहना सिखायेगा। खुद कमसे कम परिग्रह रखेगा, ताकि

जातिकी मदद न लेनी पड़े, दूसरेके आगे हाथ न फैलाना पड़े। अिस तरह संन्यासीका-सा रहन-सहन करके रहना ही अुसका वनवास है। प्रेममय असहयोगमें अुद्दण्डताकी गुंजाअिश नहीं। अुसमें तो संयमकी रोशनी ही हो सकती है। बोये हुअे बीजको संयमका पानी पिलाना है। जो यह सोचता है कि 'मेरे लड़के न ब्याहे गये, तो दूसरी जातिमें ब्याह दूंगा और खानेकी दावत दूसरी जगह करूंगा', वह संयमी भी नहीं और असहयोगी भी नहीं। वह तो ढोंगी है। संयमी असहयोगी तो जातिके ही गांवमें रहकर तपस्या करेगा। अहिंसाके पास दुश्मनी नहीं टिक सकती। अैसा त्यागी हिमालयमें बैठकर पंचोंके लिअे अहिंसा पालनका दावा करके अुनका दिल पिघलानेकी आशा नहीं कर सकता। पंचोंने जो अुसकी बेअिज्जती की है, अुसमें अेक कारण यह भी है कि अुन्होंने अुसे अविवेकी अुद्धत नौजवान मान लिया है। अुसे भी यह साबित करना है कि वह गरीब और नौजवान होकर भी अुद्धत या अविवेकी नहीं है, बल्कि नम्र और विवेकी है।

अैसा करते करते, सेवाके मौकों पर अपनी जातिके भाअी-बहनोंकी सेवा करते करते और फिर भी बदलेकी आशा न रखते हुअे वह देखेगा कि सुधारके काममें दूसरे अुसके साथी हो गये हैं। वे असहयोग न करें तो भी अुनका प्रेम अुसके साथ होगा। कारण, जैसे हम सरकारी नौकरोंको अपने ज्ञान और त्यागके घमण्डमें गालियां देते हैं, वैसे हमारा यह संयमी नौजवान अुन लोगोंको गालियां न देगा, जो जातिमें रहकर अुसका साथ न दें या विचारमें अुसके साथ होकर भी असहयोगमें शरीक न हों। बल्कि वह अुनसे प्रेम करके अुनके दिलोंको जीत लेगा। अुसे रोज यह अनुभव होता जायगा कि प्रेम तो पारस-मणि है। पर यह तजरबा होनेमें देर भी लगे, तो अुसे धीरज न छोड़ना चाहिये और यह भरोसा रखना चाहिये कि प्रेमबीजका नतीजा अनगिनत प्रेमफल ही हो सकते हैं।

मुझे जो ख़त मिला है, अुसमें पूछा गया है कि हमारा तपस्वी असहयोगी जातिमें भोजन करना छोड़ दे, तो क्या जातिमें जो मित्र हैं अुनके यहां भी खाना बन्द कर दे? हकीकत तो यह है कि जातिसे

अिस्तीफा मिलते ही पंच गुस्सेमें आकर अुस त्यागीको जातिसे बाहर करेंगे, और जो कोअी अुसके साथ पानी या रोटी-बेटी-व्यवहार करेगा अुसे सजा देंगे। अिसलिअे व्यक्तियोंके साथ खाना-पीना छोड़नेका सवाल ही नहीं रहेगा। अिस तरह जाति-बाहर करनेका हुक्म निकले, तो संयमीका विशेष धर्म यह होगा कि खुले या छिपे तौर पर जातिके मित्र अुसे खानेका न्योता दें तो भी वह न जाय। कोअी जातिवाला जान-बूझकर असहयोगमें शामिल हो, तो अुसका न्योता जरूर मानना चाहिये। अैसा हो भी सकता है।

मगर आम तौर पर यह कहा जा सकता है कि मित्रोंके साथ खाना-पीना छोड़नेका मौका ही न आवेगा। फिर भी मान लीजिये कि आवे तो अुसे छोड़नेकी जरूरत नहीं। हां, जो लड़की बेचना ठीक समझते हों, अुनका न्योता वह मंजूर न करे।

अिस परसे हमने देख लिया कि :

१. असहयोग करनेसे पहले लोकमत तैयार करनेके बहुतसे काम करने चाहिये।

२. असहयोगीमें गुस्सा किये बिना विरोधीकी गालियां वगैरा सहनेकी शक्ति होनी चाहिये।

३. असहयोगमें प्रेम ही होना चाहिये।

४. असहयोग करनेके बाद असली जगह न छोड़नी चाहिये।

५. असहयोगीको कठिन संयम रखना चाहिये।

६. असहयोगीको अपने अुपायों पर पूरा भरोसा होना चाहिये।

७. असहयोगीको फलके बारेमें परवाह न करनी चाहिये।

८. असहयोगीके हर कदममें विवेक, विचार और नम्रता होनी चाहिये।

९. असहयोग करनेका अधिकार या धर्म सबको नसीब नहीं होता। अधिकारके बिना असहयोग बेकार होता है।

यह सच है कि कुछको या बहुतोंको अूपरके नियम असंभव लगेंगे। कड़े संयमके बिना शुद्ध असहयोग नहीं हो सकता। फिर, जिस मामले पर हमने विचार किया है, अुसमें तो वह तपस्वी खुद ही करने-

वाला है, खुद ही भोगनेवाला है, खुद ही सेनापति और खुद ही सिपाही है। अुसमें कमी रहे तो अुसके माथे निराशा लिखी ही समझनी चाहिये। अिसलिअे अैसे स्वतंत्र असहयोगीके लिअे तो असहयोग न छेड़ना ही अक्लमंदीकी पहली निशानी है। पर छेड़ देनेके बाद तो जान चली जाय पर बात न छोड़नी चाहिये।

दूसरा सवाल यह अुठता है कि अितना संयम रखकर जाति जैसी संकुचित संस्थामें सुधार भी क्या करना? फिर, दूसरे कहेंगे कि हमें जब जातिको ही मिटाना है, तब कन्या-विक्रय वगैरा बुराअियोंके पीछे क्यों पड़ना चाहिये? यह सवाल बेमौजूं है। हमारे सुधारका सवाल जातिके लिअे ही है। अगर कुटुम्बके साथ असहयोग करनेकी बात ठीक समझी जाती है, तो जब तक जातियां हैं तब तक अुनके साथ असहयोग करनेकी बात भी ठीक समझी जानी चाहिये।

नवजीवन, १३-४-'२४

५

बहिष्कारका हथियार

['जात-पांतकी हालत' नामक टिप्पणी]

मारवाड़ी भाअियोंका सम्मेलन कलकत्तेमें था। अुसमें मुझे ले गये थे। वहां सिर्फ जाति-सुधारकी ही बात थी और अुसीके बारेमें बहुतसे सवालों पर चर्चा हुअी थी। अैसी जगह पर मैं क्या बोलता? सुधारके बारेमें बोलनेके बजाय मैंने बहिष्कारके अुसूलकी बात ही अुनसे ज्यादा की। मैं जानता था कि बहिष्कारने अुनमें भयंकर स्वरूप पकड़ लिया है और भीतर भीतर जहर फैला रखा है। अिस भाषणका सार सभी हिन्दुओं पर लागू होनेके कारण अुसे मैं यहां देता हूं।

बहिष्कारका हथियार जब शुद्ध मनुष्योंके हाथमें होता है, तब अुसका अच्छा अुपयोग होता है; नहीं तो वह निरी हिंसाका स्वरूप

पकड़ कर अुपयोग करनेवालेका और जिसके खिलाफ अुपयोग किया जाय अुसका भी नाश कर सकता है।

आजकल हम बहिष्कार करनेके अधिकारी नहीं रहे। कोअी पिता अपनी दस सालकी अुम्रमें विधवा हुअी लड़कीको फिरसे ब्याह दे, तो क्या अुसे, अुस लड़कीको और अुसे ब्याहनेवालेको जातिके बाहर करनेमें कोअी पुण्य है? क्या जो अनीति करते हैं, दिन-दहाड़े व्यभिचार करते हैं, शराब पीते और मांस खाते हैं, अुनका बहिष्कार होता है? जो विचारमें व्यभिचार करते हैं, अुनका क्या होता है? मतलब यह कि जब तक हममें शुद्धि नहीं होती, तब तक कौन किसका बहिष्कार करनेका अधिकारी है? कोअी भी नहीं।

बहिष्कारका नतीजा नयी जातियां पैदा करनेका ही स्वरूप पकड़ता है। आज जिन्हें हम तड़ें कहते हैं, वे ही कल जातियां बन जायंगी। अिस प्रकार जातियोंके संकरके अिस युगमें बहिष्कारमें हर तरहसे नुकसान ही है।

वर्णाश्रम तो धर्म है, पर बहुतसी जातियां धर्म नहीं हैं। वर्णाश्रमको बचाना चाहिये। जातियोंको मिटाना चाहिये। अिसलिअे सुधारकोंका हौसला बढ़ाना चाहिये। कुछ भी कीजिये, अिस तरहका सुधार रुक नहीं सकता। क्योंकि हिन्दू-धर्ममें गंदगी बहुत फैल गअी है, और अब चारों तरफ जाग्रति हो गयी है।

समझदारी अिसीमें है कि सुधारको धर्मका रूप दिया जाय। पर जहां सुधार अच्छा न लगे, वहां भी बहिष्कारमें बुराअी ही है।

मारवाड़ी जातिमें बुद्धि भी है और हिम्मत भी। अुसने हिन्दुस्तानका भला भी किया है और बुरा भी। मित्रके नाते बुराअीकी बात कहना भी मेरा धर्म है। परमात्मा अुन्हें अिससे बचावे और अुनका भला करे!

जिनका बहिष्कार हो, वे मर्यादामें रहकर विवेकपूर्वक जहरको बढ़नेसे रोकें और अपनी नीति पर कायम रहें।

नवजीवन, २-८-'२५

६

जाति-बहिष्कार

जिस समाजके पंच विना विचारे सिर्फ मोहके, वहमके, अज्ञानके या अीर्ष्याके वश होकर वहिष्कार करते हैं, अुस समाजमें रहनेसे बाहर निकल जाना बेहतर है; क्योंकि जहां अेक भी सच्चे आदमीको समाज छोड़े, वहां दूसरे सच्चे लोग कैसे रह सकते हैं?

यह तो हुअी अुसूलकी बात। अिस पर अमल सदा न हो सके तो भी अिसे याद रखना जरूरी है। देखा जाता है कि आजकल पंचोंकी तकलीफ बढ़ती जा रही है। अछूतको खिलाना जुर्म समझनेवाले पंच भी मौजूद हैं। अछूतको अेक पंगतमें बैठाने और अुसकी संमति देनेवाले हिन्दू पापी माने जाते हैं। अैसे पापियोंके समाजमें हममें जो भी पुण्यात्मा हों, वे सभी शामिल हो जायं।

लेकिन बहिष्कार कैसे बर्दाश्त हो? खाना न मिले, धोबीको बन्द करें, हज्जामको बन्द करें! डॉक्टरको भी बन्द क्यों न करें? अखीरमें मार डालना ही तो बाकी रहा न? बहिष्कृत सुधारकमें मरने तक अटल रहनेकी शक्ति होनी चाहिये। अछूतोंकी आत्यंतिक सेवा तो शुद्ध हुअे हिन्दू मरकर ही करेंगे। जातिमें खानेकी जरूरत भी क्या? घर बैठे खुद पकाकर शान्तिसे क्यों न खाया जाय? धोबी कपड़े न धोये, तो हाथसे धोकर पैसे बचाने चाहिये। हजामत हाथसे करना तो आज मामूली बात है। लेकिन लड़की कहां ब्याही जाय? और लड़केके लिअे लड़की कहां ढूंढ़ें? अगर जातिमें ही लड़का या लड़की देखना है और वह न मिले तो संयम पाला जाय। अितने संयमकी शक्ति न हो, तो दूसरी जातिमें ढूंढ़ा जाय। अुसमें भी न मिले तो जो न हो सके अुसके बारेमें अुदासीन रहा जाय।

वर्ण तो चार ही हैं। जातियां भले चार हों या चालीस हजार। अुपजातियोंको मिला देना ही ठीक है। छोटे छोटे बाड़ोंसे हिन्दू-धर्मका बहुत नुकसान हुआ है। जो वैश्य हैं वे सारे हिन्दुस्तानके वैश्योंमें से

किसीसे भी नाता क्यों न जोड़ें? गुजराती ब्राह्मण अपने जैसे आचार-विचारवाले किसी भी ब्राह्मणके यहां वर-कन्या क्यों न ढूंढ़ें? अितना सुधार करनेकी भी हमारी हिम्मत न हो, तो हिन्दू-धर्मके बहुत संकुचित हो जानेका डर है। बंगालकी लड़की गुजरातमें आये और गुजरातकी बंगालमें जाये, तो अुसमें कोअी बुरी बात नहीं है। वर्णको बचानेवाले अगर अुपजातियोंको बचाने चलेंगे, तो अुपजातियां तो जाती ही रहेंगी, वर्णको और खो बैठेंगे।

आज वर्ण भी छिन्न-भिन्न तो हो ही गये हैं। विचारवान स्त्री-पुरुषोंको अिस विषयका मन्थन करनेकी पूरी जरूरत है। पहले तो गुजरातके वर्ण मिलकर अपना व्यवहार फैलावें, तो कितने आगे बढ़ जायं? सब वर्ण क्या अपनी बहुतसी अुपजातियोंको अेक नहीं कर सकते? अगर विचार करने जितना अुत्साह भी अुपजातियोंके पंचोंमें न रहा हो, तो व्यक्तियोंको पहल करनी चाहिये।

लेकिन बात तो मुझे बहिष्कारकी करनी थी। अुपजातियोंके बारेमें मैंने जो विवेचन किया है, वह बहिष्कृतोंकी शान्तिके लिअे किया है। जुल्म घरका हो या बाहरका, अुसे मिटानेका अुपाय अेक ही है। बहिष्कृतका रास्ता अभी तो बहुत ही सीधा है। लेकिन मान लीजिये कि हमारे मौजूदा वातावरणमें अुपजातिसे निकला हुआ मनुष्य वर्णसे भी निकल जाय तो? तो भी क्या हुआ? अकेले खड़े रहनेकी शक्ति जुटा लेनेवाले सुधारक आजकल हिन्दुस्तानमें हर जगह देखे जाते हैं।

लेकिन अकेले खड़े रहनेकी हिम्मतवाले जो शुद्ध आदमी हों, अुनमें गुस्सा न होगा, द्वेष न होगा, सहनशीलता होगी। वे जालिमका तिरस्कार न करेंगे, वे जालिमका भी भला चाहेंगे; और मौका मिलने पर अुसकी सेवा करेंगे। सेवा करनेका धर्म कोअी कभी न छोड़े। सेवा लेनेका हक तो है ही कहां? धर्म तो कहता है: 'मैं सेवा ही हूं। मुझे विधाताने अधिकार दिया ही नहीं।' जिसे मिला नहीं वह खोये क्या? बहिष्कृतको सेवा लेनेकी अिच्छा ही छोड़ देनी चाहिये। यह अजीब कानून है कि अैसे लोगोंको सेवा मिल ही जाती

है। लेकिन सेवकको अिससे कोअी सरोकार नहीं। सेवा पानेकी आशासे जो सेवा छोड़नेका दावा करते हैं वे तो डाकू हैं। वे निराश ही रहेंगे।

अछूतोंकी सेवा करनेवालो! रजकणकी तरह नम्र रहकर जो तुम्हें रौंदे अुसे रौंदने दो। धरती भी पैरों तले कुचली जाती है, फिर भी हमें अभयदान देती है। अिसलिअे हम अुसे मां कहते हैं और रोज सुबह अुठकर अुसकी स्तुति करते हैं: 'समुद्र जिसका वसन है, पहाड़ जिसके स्तनमण्डल हैं, विष्णु जैसे रक्षक जिसके पति हैं, अुसे करोड़ों नमस्कार हों। हे माता, हमारे पैर तुम्हें छूते हैं, अिसके लिअे हमें क्षमा करना।' जिन सेवकोंने अैसी मातासे अुत्तम नम्रता सीखी है, अुनका बहिष्कार हो तो अुसमें अुनका कोअी नुकसान नहीं है।

नवजीवन, ११–१०–'२५

७

बहिष्कार हो तो ?

अेक भाअी लिखते हैं:

"आजकल कोअी कोअी जाति अछूतपन न माननेवालोंको, भले वे कितने ही अच्छे गुणोंवाले हों, जातिसे निकाल देती है। पर शास्त्रोंने जिसे बड़ा भारी पाप माना है, अुसके बारेमें पंच कुछ नहीं करते। जैसे कन्या-विक्रयको शास्त्र महापाप मानते हैं, पर अिस बारेमें पंच कुछ नहीं करते। और अछूत-पनके बारेमें दोषी समझे जानेवालोंको बिना पूछे और बिना कोअी सफाअी मांगे जातिसे निकाल देते हैं। अितना ही नहीं, निष्पक्ष निर्णायकसे फैसला करवानेकी बात भी अुन्हें मंजूर नहीं। अैसे जालिम पंचोंको अदालतमें घसीटा जाय या नहीं?"

अिसका जवाब मैं तो अेक ही दे सकता हूं: पंच कितना ही जुल्म करें, फिर भी अुन्हें अदालतमें न घसीटा जाय। अुनकी मरजी

हो वैसी सजा दें। वह सजा भोगनेसे पंचोंका गुस्सा कम होता है और वे खुद पछताते हैं। फिर, जहां पंच अन्याय करते हैं, वहां तो बहिष्कार स्वागतकी चीज माना जाय। जिस जातिमें कन्या-विक्रयका अत्याचार होता हो, जिस जातिमें ढोंग हो, जिसके पंच शराब पीने और मांस खानेको दरगुजर करते हों, अुस जातिमें रहनेसे फायदा हो ही नहीं सकता। जाति तो रूढ़ि है, धर्म नहीं। जातिमें रहकर मनुष्य कुछ ही सहूलियतें पाता है। लेकिन जहां जातिकी नीति बिगड़ जाय, वहां ये सहूलियतें न ली जायं। जिस दलीलसे हमने सरकारके साथ असहयोग किया, अुसीको जाति पर लागू करके अुसके साथ भी असहयोग हो सकता है।

लेकिन यहां तो यह सवाल ही नहीं है। यहां तो जाति बहिष्कार करती है। अिस बहिष्कारको अच्छा मौका समझकर अिसका स्वागत करना चाहिये। लेकिन अिसे अच्छा मौका वही मान सकता है, जिसने अपना धर्म पाला है, जातिकी सेवा की है और जातिकी नीति बढ़ाने-वाली आज्ञाओंको हमेशा खुशीसे माना है। संयमी ही बहिष्कारका स्वागत कर सकता है। स्वछंदी बहिष्कारसे तंग आ जाता है। लेकिन अछूतपन मिटाना स्वच्छंदीका नहीं, संयमीका काम है। अछूतपनको मिटाना भोगोंको बढ़ानेके लिअे नहीं, बल्कि सेवाके मौके बढ़ानेके लिअे है, सेवासे किसीको बहिष्कृत न रखनेके लिअे है।

नवजीवन, २४–५–'२५

८

स्वयं ही करना पड़ेगा

खंभातसे अेक नौजवान लिखते हैं :

"हमारी जैन भावसार जातिमें बहुतेरे 'नवजीवन' के पढ़नेवाले हैं। अिसलिअे 'नवजीवन' में आनेवाले समाज-सुधारके लेखोंको पढ़कर कुछ समयसे अुन्हें पुरानी कुरीतियोंसे नफरत पैदा हुअी थी और वक्त आने पर अुन रिवाजोंको मिटा देनेकी अिच्छा थी। थोड़े दिनोंकी कोशिशसे मृत्युभोज और सीमंतके भोजमें शरीक न होनेकी २०–२५ नौजवानोंने प्रतिज्ञा ली और बड़े माने जानेवाले लोगोंका गुस्सा सह लिया। औरोंको भी समझाया, मगर वे अिस तरहके भोज छोड़नेको तैयार न थे। प्रतिज्ञा लेनेवाले तो खूब मजबूत हैं, पर अुनकी पत्नियां, मां-बाप वगैरा घरके लोग अुन्हें छोड़कर अुन भोजोंमें शरीक होते हैं। क्या अिस तरह खानेको जाना अुनके लिअे अच्छा समझा जाय? आप कुछ अैसा लिखेंगे, जिससे अुन पर असर पड़े? अिन मामलोंमें पत्नीको अपने पतिकी नकल करनी चाहिये या नहीं? अैसे भोजनमें शरीक होनेमें जैन साधु किसी भी तरहका हर्ज नहीं समझते। क्या यह ठीक है?"

शादी या अैसे ही दूसरे मौकों पर दिये जानेवाले भोजको मैं माफीके लायक समझता हूं। सीमन्तके समय दिये हुअे भोजको शर्मकी बात मानता हूं। और मरने पर खिलानेको पाप समझता हूं, फिर भले ही वह बारहवेंका हो या तेरहवेंका, बूढ़ेकी मौतसे संबंध रखता हो या नौजवानकी। मुझे तो सभी भोज फिजूल और जंगली लगते हैं। शरीरकी रोजमर्राकी जरूरतोंको हम कैसे भोगका साधन बना डालते हैं, यह मेरी बुद्धि समझ नहीं सकती। भले ही अैसी किसी चीजको मेरी कमजोरी सह भी ले, तो भी अगर हम रूढ़िके गुलाम न बन गये हों, तो हमें मृत्युभोज और सीमन्त-भोजमें तो हरगिज न जाना

चाहिये। अच्छी बात तो हमारा अपना शुद्ध आचरण है। मगर हम करते हैं अुसी तरह मां-बाप, स्त्री या बड़े लड़के-लड़की न करें, तो अुसका दुःख न होना चाहिये और अुन पर जबरदस्ती न होनी चाहिये। हम यकीन रखें कि हमारा अपना आचरण शुद्ध रखनेसे अुसकी छूत दूसरोंको भी लगेगी। मुझे पता नहीं, जैन साधु क्या करते हैं। लेकिन अिसमें शक नहीं कि समाजकी कुरीतियोंकी वे परवाह न करते हों तो वह ठीक नहीं है।

नवजीवन, २९–७–'२८

९

विद्यार्थियोंका सुन्दर सत्याग्रह

मैं 'नवजीवन' में बहुत बार लिख चुका हूं कि सत्याग्रह सर्व-व्यापक होनेके कारण जैसे राजनीतिमें वैसे ही समाज और धर्मके मामलोंमें भी किया जा सकता है। जैसे हाकिमोंके खिलाफ वैसे ही समाजके, कुटुम्बके, मांके, बापके, स्त्रीके और पतिके खिलाफ यह दिव्य शस्त्र अिस्तेमाल किया जा सकता है; क्योंकि अिसमें हिंसाकी तो गंध तक नहीं हो सकती। और जहां अहिंसा यानी प्रेम ही प्रेरणा देनेवाली चीज है, वहां किसी भी हालतमें निडर होकर अिस हथियारको चलाया जा सकता है। अिस तरहका प्रयोग धर्मजके साहसी विद्यार्थियोंने धर्मजके समाजके खिलाफ कुछ दिन पहले ही करके बता दिया है। अुसके बारेमें पत्र मेरे पास आये हैं। अुनमें से नीचे लिखी हकीकतें मिलती हैं।

थोड़े दिन पहले अेक गृहस्थने अपनी मांके बारहवें पर जाति-भोज दिया। भोजके पहले दिन नौजवानोंमें अिस पर बड़ी चर्चा हुअी। अुन्हें और कुछ गृहस्थोंको अिस तरहके भोजोंसे नफरत तो पैदा हो ही गयी थी। विद्यार्थियोंके मण्डलने तय किया कि अिस बार कोअी

कदम जरूर अुठाया जाय। आखिर बहुतोंने नीचेकी तीनों या अुनमें से अेक या दो प्रतिज्ञाअें लीं :

"सोमवार ता० २३–१–१९२८ को बारहवेंके सिलसिलेमें जो बड़ा भोज होनेवाला है, अुस तरहके बड़े भोजोंमें (१) हम पंगतमें बैठकर या परोसा लेकर नहीं खायेंगे; (२) अिस रूढ़िके खिलाफ सख्त विरोध बतानेके लिअे अुस जूनके लिअे अुपवास रखेंगे; (३) अिस काममें हमारे घर या कुटुम्बकी ओरसे जो भी तकलीफ आयेगी, अुसे शांति और राजी-खुशीसे सहेंगे।"

और अिसलिअे भोजके दिन बहुतेरे विद्यार्थियोंने, जिनमें कुछ छोटे बच्चे भी थे, अुपवास किया। अिस कामसे विद्यार्थी-मण्डलने बड़े माने जानेवाले लोगोंका गुस्सा अपने सिर ले लिया। अैसे सत्याग्रहमें विद्यार्थियोंको आर्थिक खतरा भी कम नहीं अुठाना पड़ता। बड़ोंने विद्यार्थियोंको मिलनेवाली आर्थिक सहायता और मकानोंकी सहूलियत वापस ले लेनेकी धमकी दी। पर विद्यार्थी दृढ़ रहे। भोजके दिन २८५ विद्यार्थियोंने भोजमें भाग नहीं लिया और बहुतोंने तो अुपवास भी किया।

अिन विद्यार्थियोंको धन्यवाद देना चाहिये। मैं अुम्मीद रखता हूं कि हर जगह विद्यार्थी-समाज सुधारके कामोंमें आगे बढ़कर हिस्सा लेंगे। जैसे स्वराज्यकी कुंजी विद्यार्थियोंकी जेबमें है, वैसे ही समाज-सुधार और धर्मरक्षाकी कुंजी भी वे अपनी जेबमें लिये फिरते हैं। हो सकता है कि लापरवाहीके कारण अपनी जेबमें पड़ी हुअी चीजका अुन्हें पता न हो। पर मुझे अुम्मीद है कि धर्मजके विद्यार्थियोंका काम देखकर दूसरे विद्यार्थी अपनी शक्तिका माप कर लेंगे। मेरे खयालसे अुस स्वर्गवासी बहनका सच्चा श्राद्ध तो नौजवानोंने अपने अुपवाससे किया है। जिसने भोज दिया अुसने अपना रुपया बर्बाद किया और गरीबोंके सामने खराब मिसाल रखी।

अमीरोंको परमेश्वरने रुपया दिया है तो वे अुसे परमार्थके काममें लगायें। अुन्हें समझना चाहिये कि गरीब लोग शादी या

गमीके मौकों पर जातिको खिला नहीं सकते। अुन्हें यह भी जानना चाहिये कि अिस खराब रूढ़िसे बहुतसे गरीब पामाल हो गये हैं। जातिभोजमें जो रुपया खर्च हुआ वह गरीब विद्यार्थियोंके, गरीब विधवाओंके, गोरक्षाके, खादीके या अछूतोंके लिअे लगाया जाता, तो अुससे लाभ होता और मरे हुअेकी आत्माको शान्ति मिलती। भोजन तो भुला दिया गया, अुसका किसीको लाभ नहीं मिला और विद्यार्थियों तथा धर्मजके दूसरे समझदार लोगोंको अुससे दुःख हुआ।

कोअी यह शंका न करे कि जिस भोजके लिअे सत्याग्रह किया गया, वह भोज अगर बन्द न रहा तो सत्याग्रह किस कामका। विद्यार्थी खुद जानते थे कि अुनके सत्याग्रहका तुरन्त असर होनेकी बहुत कम संभावना है। लेकिन अुनमें जाग्रति कायम रहेगी, तो हम यह मान सकते हैं कि दुबारा किसी सेठकी बारहवां करनेकी हिम्मत न होगी। अिसके लिअे सदा धीरज और आग्रहकी जरूरत होती है।

क्या पंच माने जानेवाले बूढ़े लोग समयका विचार नहीं करेंगे? वे रूढ़िको समाज या देशकी तरक्कीका अेक जरिया मानकर कब तक अुसके गुलाम रहेंगे? वे अपने बच्चोंको ज्ञान तो लेने देंगे, लेकिन अुस ज्ञानको अिस्तेमाल करनेसे अुन्हें कब तक रोक सकेंगे? धर्म-अधर्मका विचार करनेवालोंमें जो शिथिलता है, अुसे छोड़कर और सावधान होकर सच्चे पंच कब बनेंगे?

नवजीवन, २६–२–'२८

१०

मरनेके बादका भोज

मरनेके बाद जो जातिभोज दिया जाता है, अुसे मैंने जंगली बताया है। अुस बारेमें अेक सज्जन बड़े दुःखसे लिखते हैं:

"आप सनातनी हिन्दू होनेका दावा करते हैं। आप गीताजी और रामायणके पुजारी हैं। फिर भी मृत्युभोज आदि जो क्रियायें की जाती हैं, अुन्हें जंगली कैसे कह सकते हैं यह समझमें नहीं आता। शास्त्र तो कहते हैं कि मरनेके बाद ब्राह्मणोंको खिलानेसे मरे हुओंको अच्छी गति मिलती है, अुन्हें सान्त्वना मिलती है। अब मैं अिसमें से किसे सच्चा मानूं?"

मैं कअी बार लिख चुका हूं कि जो कुछ संस्कृतमें लिखा हो, अुस सबको धर्मशास्त्र नहीं मानना चाहिये। अिसी तरह यह भी नहीं मानना चाहिये कि धर्मशास्त्र समझे जानेवाले मनुस्मृति वगैरा प्रमाण-ग्रंथोंमें जो कुछ आजकल हम पढ़ते हैं, वह सब मूल लेखकका ही लिखा है; या अैसा हो तो भी वह सब आज अक्षरशः मानने लायक है। मैं तो अैसा नहीं मानता।

कुछ सिद्धान्त सनातन हैं। अुन सिद्धान्तोंको माननेवाला सनातनी है। लेकिन यह माननेकी कोअी वजह नहीं कि अुन सिद्धान्तों परसे जो जो आचार जिस जिस जमानेके लिअे बनाये गये थे, वे सभी दूसरे जमानेमें भी सच ही रहेंगे। स्थान, काल और परिस्थितियोंके कारण आचार बदलते हैं। मरने पर भोज देनेका पहले किसी समयमें अर्थ रहा होगा, लेकिन आज हमारी बुद्धि अुसको समझ नहीं सकती। जहां बुद्धि लगाअी जा सकती है, वहां श्रद्धाकी गुंजाअिश नहीं होती। जो चीज बुद्धिसे परे है, अुसीके लिअे श्रद्धा कामकी है। यहां तो बुद्धिसे हम देख सकते हैं कि मरनेके बाद भोजन करानेमें धर्म नहीं है। अनुभवसे हम देख सकते हैं कि दूसरे धर्मोंमें अिस चीजको जगह नहीं दी गयी है। तब हिन्दू-धर्ममें अैसे भोजोंको जगह देनेके लिअे संस्कृतके श्लोकोंके सिवा हमारे पास दूसरे मजबूत कारण होने चाहिये। हिन्दू

धर्मशास्त्रोंके या यों कहिये कि सभी धर्मशास्त्रोंके सिद्धान्तोंके साथ अैसे भोजोंका कोअी मेल नहीं बैठता। अैसे भोजोंसे होनेवाले नुकसान हम आंखोंसे देख सकते हैं। अैसे प्रत्यक्ष प्रमाणोंके सामने संस्कृतके श्लोक किस कामके? मृत्युभोजको न तो बुद्धि कबूल करती है, न दिल करता है, और न दूसरे देशोंका अनुभव करता है। अैसे भोजको जंगली माननेके लिअे अिससे ज्यादा कारण मेरे पास नहीं हैं और न किसीके पास होनेकी आशा रखी जा सकती है। जैसे सभी पुरानी बातोंको झूठ माननेवाले भूल करते हैं, वैसे ही अुन्हें सच्ची समझनेवाले भी गलती करते हैं। पुरानी हों या नअी, सभी चीजोंको बुद्धिकी कसौटी पर चढ़ाना चाहिये; और जो चीज अुस पर न चढ़ सके अुसे बिलकुल छोड़ देना चाहिये।

नवजीवन, २०–६–'२६

११

सीमन्त वगैराके भोज

जंबुसरसे श्री मणिलाल छत्रपति लिखते हैं कि अुनके घरमें सीमन्तका मौका आने पर अुन्होंने अन्तमें जातिभोज न देनेकी हिम्मत की है। अिस पर मैं अुन्हें बधाअी देता हूं। कांग्रेसका काम करनेवाले सेवकोंमें अितनी हिम्मतका होना कोअी अनोखी बात नहीं समझी जानी चाहिये। अैसी हिम्मतके लिअे अेक ही बातकी जरूरत होती है, और वह है जाति-बाहर होनेकी निडरता। जाति-बाहर होनेका मतलब अितना ही है कि हम जातिभोज वगैरामें न जा सकें और लड़के-लड़कीका लेनदेन जातिमें न कर सकें। जब खानेका ही बहिष्कार करना है, तब तो खानेका न्योता न मिलना और भी अच्छा है; जंजालसे छूटे। और लड़के-लड़कीकी सगाअी अुस जातिमें न हो, तो जातिके बाड़े आसानीसे तोड़े जा सकते हैं। अगर देशको अूंचा अुठाना

है, तो ये बाड़े तोड़ने ही पड़ेंगे। अिस तरह श्री मणिलाल छत्रपति जैसे सुधारकोंको किसी भी बातका डर रखनेकी जरूरत नहीं है।

ये भोज सभ्य आदमीको जंगली बनाते हैं, गरीबोंको कुचलते हैं और देशको कलंक लगाते हैं। यह जरा भी शोभा देनेवाली बात नहीं कि रुपये-पैसेसे सुखी लोग भी खानेके पीछे पागल हो जायं। अिसलिअे श्री मणिलाल छत्रपति जैसे सुधारक जैसे जैसे बढ़ते जायंगे, वैसे वैसे कुरीतियां कमजोर पड़ती जायंगी। अैसे भोजोंसे बचनेवाले रुपयेका कुछ हिस्सा सुधारकोंको सार्वजनिक काममें या जो लोग जातिके बाड़ेमें ही रहना चाहते हों अुनकी सात्त्विक सेवामें लगाना चाहिये। जहां पंच अज्ञानके वश होकर चलते हैं, वहां वे अपना बड़ा पद छोड़ देते हैं और अिज्जतके लायक नहीं रहते। अिसलिअे जातिके सुधारमें लगाया हुआ रुपया भी भले काममें खर्च हो, अिसकी सावधानी दान करनेवालेको रखनी चाहिये।

नवजीवन, २३–९–'२८

१२

कर्ज करके भोज

वढवाणसे अेक दुकानदार लिखते हैं:

"मैं आजकल अनाजकी दुकान चला रहा हूं। बहुतेरे अछूत भाअी मेरे यहांसे अनाज लेते हैं। अुन लोगोंके साथ काम पड़नेसे मुझे बहुतसे अनुभव हो रहे हैं। अेक अछूत भाअी हैं। अुनके दो बड़े भाअी मर गये हैं। अुनके बालबच्चे बहुत हैं। विधवाअें अिधर-अुधरका काम करके बच्चोंको पालती हैं। अिस बीच बूढ़ा मर गया। अुसके पीछे अुसका अेक लड़का है। अुसके पास अनाजके दाम भी देनेको नहीं हैं। पर जाति अुसे पांच सौ रुपया कर्ज करके मिठाअी और नमकीनका भोजन

करानेको कह रही है। अछूत भाअियोंमें जो ब्याजखाअू लोग हैं, वे अैसा काम कराते हैं। अिसका क्या अुपाय है?"

अिसका अेक अुपाय तो सीधा है, पर वह कठिन है। अूंचे कहानेवाले वर्णके लोग जो करते हैं, वही अछूत भी करते हैं। अिसलिअे 'अूंचे' वर्ण भोज देना छोड़ दें, तो अछूत भाअी 'अूंचे' वर्णसे सीखी हुअी बुरी आदतें सहजमें छोड़ देंगे। पर अैसा शुभ अवसर आनेमें देर तो लगेगी ही। अिसलिअे अभी तो यही रास्ता है कि अछूत भाअियोंको अपनी हालतकी जानकारी कराकर अुनसे सुधार कराया जाय। बहुत लोग तो डरके मारे मृत्युभोज करते हैं। अछूतोंमें भी जाति-बाहर होनेका डर तो है ही। सच पूछा जाय तो 'अूंचे' वर्णोंसे ज्यादा डर है। किसी 'अूंचे' वर्णके जाति-बाहर हुअे सज्जनके पास सारी हिन्दू दुनिया है। लेकिन जाति-बाहर हुअे अछूतका सिर्फ भगवान ही बेली है; या वह स्वार्थके मारे दूसरा धर्म अपना लेता है। जब अछूत भाअियोंको ज्ञान होगा, तब सुधार करनेकी अुनकी शक्ति 'अूंचे' वर्णोंकी शक्तिसे बहुत बढ़ जायगी। 'अूंचे' वर्णोंके रास्तेमें दूसरे स्वार्थ और लालच आ जाते हैं; अछूतोंमें समझ और निडरता आ जानेके बाद अेक भी चीज आड़े नहीं आ सकती। अुनमें अैसी समझ और निडरता लाना 'अूंचे' वर्णोंका धर्म है, यह अुनका प्रायश्चित्त है।

नवजीवन, १४–४–'२९

१३
जातिभोज

यह महीना शादियोंका है। ब्याहके सिलसिलेमें जातिभोज जैसे भारी खर्चके काम किये जाते हैं। जिसके पास रुपया है, वह जातिभोज वगैरामें खर्च न करे, यह कहना तो ज्यादती समझी जायगी। लेकिन अैसे भोज आज फर्ज बन गये हैं। अिससे कुटुम्बके लिअे अुनका बोझ असह्य हो गया है। अैसे भोज स्वेच्छाकी चीज होने चाहिये। अितना ही नहीं, बल्कि धनवान कुटुम्बोंको खुद संयम करके अिस बारेमें अुदाहरण रखना चाहिये। बचे हुअे रुपयेका अुपयोग शिक्षाके लिअे या समाजकी तरक्कीके दूसरे कामोंमें हो, तो अुससे अुस जातिको और अिस तरह सारी जनताको फायदा पहुंचे। शादीके वक्त जातिभोजका रिवाज बन्द होना सिर्फ अच्छा ही है, पर मृत्युभोज बंद करना जरूरी है। मृत्युभोजमें तो मुझे पाप ही दीखता है। अिस भोजमें मुझे कुछ भी रहस्य नहीं दिखाअी देता। भोज आनंदका मौका माना गया है। मौत रंजका मौका है। समझमें नहीं आता कि अुस वक्त भोज कैसे दिया जाय। सर चिनुभाअीके मरने पर जो भोज दिया गया था, अुसमें स्वर्गवासीके मानके खातिर मैं हाजिर रहा था। अुस वक्तका दृश्य, अुस वक्तका खानेवाली अलग अलग जातियोंका झगड़ा, खानेवालोंकी मनमानी वगैरा बातें आज भी मेरी आंखोंके सामने नाच रही हैं। अुनमें मुझे मरनेवालेके लिअे कहीं भी आदर नहीं दिखाअी दिया। शोकको तो वहां स्थान ही कैसे होता? अैसे सुधारके लिअे भी समय चाहिये, अिससे रूढ़िकी ताकत और हमारी ढिलाअी जाहिर होती है। अैसा सुधार पंचायत न करे तो भी व्यक्ति तो कर ही सकता है। पंचायतोंकी हालत आज दयाजनक है। अकसर वे सुधार चाहती हैं, पर करते डरती हैं। हिम्मतवाले आदमी पहल करके सुधार चाहनेवाली पंचायतोंको बल पहुंचाते हैं और सुधारका दरवाजा खोलते हैं।

नवजीवन, ११–५–'२४

१४

मृत्युभोज

अेक भाअी अपने पर आया हुआ धर्मसंकट बयान करते हैं। अुनकी मांके मरने पर जातिवाले अुनसे मृत्युभोज करनेका हठ कर रहे हैं। अुनका खुद अिसमें विश्वास नहीं है। वे मानते हैं कि अैसे भोजोंसे नुकसान होता है। दूसरी तरफ, भोज न करें तो जातिवालोंका जी दुखता है। अैसे संकटके वक्त क्या किया जाय, यह सवाल है।

समाजसे पुरानी बुराअियां निकालनी हों, तो पहल करनेवाले पर अैसे धर्मसंकट आया ही करते हैं। विनय और दृढ़ता ये दो गुण अुस वक्त काम आते हैं। विरोधियोंका विरोध विनयके साथ सहना और अपना निश्चय दृढ़तासे कायम रखना चाहिये। जाति-वालोंको खुश करनेके लिअे भी हमें अधर्म न करना चाहिये। मरनेके बाद दान करनेका रिवाज सभी जगह जान पड़ता है। दान करनेके अिरादेसे न हो तो भी अिसलिअे कि हमें कोअी कंजूस न समझे या जातिकी रायके लिअे हमारी लापरवाही न दीखे, हम जातिभोजमें शक्तिभर या अुससे भी ज्यादा जो खर्च करते हैं, अुसे जातिके बच्चोंकी शिक्षामें ही लगायें तो पूरा फायदा हो। झूठे घमण्डसे या डरसे हम जो रुपया शादी-गमीके मौकों पर लगाते हैं, वह सब या अुसका बड़ा हिस्सा बचाना सीखें, तो सदा रुपयेकी तंगीका जो सवाल सामने रहता है वह न रहे। पर अीश्वर जाने यह कैसी माया है कि ज्ञानी भी अैसे मौकों पर पामर बनकर, ज्ञानको भूलकर और कर्ज करके जातिभोज करते जा रहे हैं। पर खादीकी सादगीके अिस जमानेमें अैसे खर्चोंसे हम सब बच सकते हैं।

नवजीवन, २९–६–'२४

१५

रोना-पीटना

अिस छोटेसे कमरेमें मैंने जिस धीरज और अीश्वरभावका अनुभव किया, अुसके साथ हमारे रोने-पीटनेके रिवाजकी तुलना किये बिना मुझसे नहीं रहा गया। मैंने बहुतेरी हिन्दू मौतें देखी हैं। बीमारके शरीरमें जान बाकी होने पर भी अुसके लिअे रामनामका जप होनेके बजाय रोना-चिल्लाना शुरू होते मैंने कअी बार देखा है। मौतके बाद रोने-पीटनेकी सभी धर्मोंमें मनाही है। हिन्दू-धर्म तो मानता है कि जन्म और मृत्यु अेक ही स्थितिके दो रूप हैं। अितना होते हुअे भी रोने-पीटनेका जंगली और नास्तिक रिवाज मैंने हिन्दुओंके सिवा दूसरे किसी धर्ममें नहीं देखा। मैंने पारसी, यहूदी, अीसाअी और मुसलमान मौतोंके वक्त हाजिरी दी है, लेकिन रोना-पीटना मैंने कहीं नहीं देखा। मैं चाहता हूं कि हिन्दू कुटुम्ब रोने-पीटनेके घातक, जंगली और बेकार रिवाजको अधर्म समझकर तुरन्त बन्द कर दें।

१६

रोटी-बेटी-व्यवहार

जातिभोज रोकनेसे भी शायद ज्यादा जरूरी सवाल जातियोंमें आपसमें रोटी-बेटी-व्यवहारको प्रोत्साहन देनेका है। वर्णाश्रम जरूरी है, पर कअी अुपवर्ण हानिकारक हैं। जहां रोटी-व्यवहार है, वहां बेटी-व्यवहार होना चाहिये। अिस बारेमें दो मत नहीं, अैसा कह सकते हैं। यह भी देखा जाता है कि अैसी शादियां काफी तादादमें हुअी हैं। यह सुधार अैसा है जिसे अब रोका नहीं जा सकता। अिसलिअे यह बहुत जरूरी है कि सयाने पंच अैसे सुधारको प्रोत्साहन दें। जितना अंकुश समयको पसन्द हो अुससे ज्यादा अगर पंच लोग रखेंगे, तो अुनका मानभंग हो सकता है। सुधारकोंकी शोभा अिसमें है कि यह सुधार पंचोंकी अवहेलना करके भी करना पड़े तो अुसमें वे विनय रखें। अैसे सुधारक भी देखे गये हैं, जो पंचोंको तुच्छ मानकर

अुन्हें ललकारते हैं कि आपसे जो हो सो कर लेना। अैसी अुद्धतता करनेसे सुधारमें बाधा पड़ती है; और जहां पंचायत बिलकुल कमजोर हो गअी हो और अुसके लिअे सजा देना नामुमकिन हो गया हो, वहां सुधारक सुधारक न रह कर स्वेच्छाचारी बन जाता है। स्वेच्छाचार सुधार नहीं है। अुससे समाज अुठता नहीं, गिरता है।

नवजीवन, ११–५–'२४

१७

राष्ट्रीय छात्रालयोंमें पंक्तिभेद ?

काकासाहब कालेलकरकी बढ़ती हुअी डाकमें कअी तरहके सवाल आते हैं। अुनमें अेक सवाल पंक्तिभेदके बारेमें था। अुसका जो जवाब अुन्होंने दिया है, अुसकी नकल अुन्होंने मेरे पास भेज दी है। अुनके विचार राष्ट्रीय छात्रालयोंको रास्ता दिखानेवाले हैं, अिसलिअे ज्योंके त्यों नीचे देता हूं:

> "यह पूछकर आपने ठीक किया कि विद्यापीठके छात्रालयमें विद्यार्थियोंको खानेके लिअे अलग अलग पंगतोंमें बैठाया जाता है या नहीं। आप जानते हैं कि विद्यापीठके ध्येयोंमें नीचेकी अेक कलम है: 'विद्यापीठकी मातहत संस्थाओंमें सभी चालू धर्मोंके लिअे पूरा आदर होगा और विद्यार्थियोंकी आत्माके विकासके लिअे धर्मका ज्ञान अहिंसा और सत्यको ध्यानमें रखकर दिया जायेगा।'
>
> "आप यह भी जानते हैं कि विद्यापीठ अछूतपनको कलंक और पाप मानता है। विद्यापीठमें स्वराज्यकी असहयोगी शिक्षा पानेकी अिच्छावाले और खादीको माननेवाले किसी भी धर्मके विद्यार्थी आ सकते हैं। यह नियम नहीं है कि छात्रालयमें किसी खास वर्गके या पंथके ही विद्यार्थी आ सकते हैं। आम लोगोंमें जो आचारधर्म आज खुले तौर पर पाला जाता है, अुसका

विरोध करना विद्यापीठका ध्येय नहीं है। अिसलिअे छात्रालयमें ब्राह्मण रसोअियेके हाथसे ही रसोअी होती है। शौचाचारमें रसोअी अेक खास तरीके पर ही तैयार करनेका जो आग्रह रखा जाता है, वह अिस तरह निभाया जाता है। मगर अलग अलग पंगत रखना शौचाचारका सवाल नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठाका सवाल है, अूंच-नीचके शास्त्रका सवाल है। मैं अिस बातका जरूर विचार करूंगा कि खाते वक्त मुझे किस तरहका भोजन मिलता है और अुसके बनानेमें किस तरहकी सफाअी रखी जाती है। मगर मैं अिसका ज्यादा विचार नहीं करूंगा कि अिसी तरहकी खुराक मेरे पास बैठकर खानेवालेके धार्मिक विचार कैसे हैं या अुसके आचार कैसे हैं, क्योंकि मैं प्रतिष्ठाके घमण्डको नहीं मानता। प्रतिष्ठाके घमण्डमें धर्मका तत्त्व नहीं है। अमेरिकामें गोरोंकी पंगतमें कोअी हबशी बैठे, तो गोरोंको अैसा लगेगा कि अुनका दरजा घट गया है। पतित राष्ट्रके हम लोग आपसमें अूंच-नीचका घमण्ड रखकर अैसा ही भेद पैदा करते हैं। यह दृश्य करुणाजनक न होता तो हास्यरसका अजीब नमूना ही माना जाता।

"पंक्तिभेदके बारेमें छात्रालयमें कोअी खास नियम नहीं हैं। विद्यार्थी अपने-आप अेकसाथ बैठते हैं। अध्यापक कोअी पंक्तिभेद करना ठीक नहीं समझते। अिसलिअे विद्यार्थी भी अपने-आप अुसी तरह आचरण करते हैं। दो तीन विद्यार्थी अपने मां-बापके हठके कारण रसोअीमें जहां रसोअिये खाते हैं वहीं बैठकर खाते हैं। मगर अिस रिवाजको विद्यापीठकी तरफसे अुत्तेजन नहीं मिल सकता। खुराककी सफाअी पर आज जितना ध्यान दिया जाता है, अुससे भी ज्यादा दिया जा सकता है। पर पंक्तिभेद विद्यापीठके लिअे अच्छा नहीं, क्योंकि विद्यापीठ मानता है कि यह भेद घमण्डसे पैदा हुअी झूठी प्रतिष्ठा पर खड़ा है। धर्मका शुद्ध वातावरण कायम रखनेकी विद्यापीठ हमेशा कोशिश करेगा।"

काकासाहब फूंक फूंककर कदम रखना चाहते हैं, क्योंकि वे मां-बापका या विद्यार्थियोंका जहां तक हो सके जी नहीं दुखाना चाहते। असलिअे वे कहते हैं कि: "छात्रालयमें ब्राह्मण रसोअियेके हाथसे ही रसोअी होती है। शौचाचारके धर्ममें रसोअी अेक खास तरीके पर ही तैयार करनेका जो आग्रह रखा जाता है, वह अिस तरह निभाया जाता है।" मेरी राय तो यह है कि ब्राह्मण रसोअियेका आग्रह बहुत समय तक रखना नामुमकिन है। अैसी कोअी बात नहीं कि जिस अर्थमें यहां ब्राह्मण शब्द काममें लिया गया है, वैसे ब्राह्मणोंसे ही शौचाचारका पालन होता है। यह भी नहीं कि अैसे ब्राह्मणोंसे शौचाचारका पालन होता ही है। मैंने तो गंदगीसे भरपूर, तंदुरुस्तीके नियमोंको तोड़नेवाले कितने ही ब्राह्मण रसोअिये देखे हैं; दो आंखोंवाले किस अिन्सानने नहीं देखे होंगे? शौचाचारमें निपुण, तंदुरुस्तीके कायदे जाननेवाले और पालनेवाले अब्राह्मण रसोअिये भी मैंने बहुत देखे हैं। अिसलिअे अगर ब्राह्मण शब्दके असली मतलबको ध्यानमें रखकर जो शौचाचारको पाले वही ब्राह्मण माना जाय, तो सब राष्ट्रीय छात्रालय आसानीसे काकासाहबका नियम पाल सकेंगे। जो जन्मसे ब्राह्मण है अुसीको ब्राह्मण माना जाय, तब तो शौचाचारको पालनेवाले ब्राह्मण रसोअिये बहुत नहीं मिलेंगे; और जो मिलेंगे वे अितने महंगे होंगे और अितने सिर चढ़ेंगे कि अुन्हें रखना और निभाना लगभग असम्भव हो जायगा।

विद्यापीठ सत्य और अहिंसाकी आराधना करता है। अिसलिअे हमारे छात्रालयोंमें जैसी हालत हो वैसी ही जाहिर करनी चाहिये, अन्दर या बाहर अुसे छिपाया नहीं जा सकता। अिसलिअे काकासाहबने साफ कर दिया है कि विद्यापीठके छात्रालयमें पंक्तिभेदके लिअे जगह नहीं है। पंक्तिभेदके गर्भमें ही अूंच-नीचका भेद है। वर्णभेदके साथ अूंच-नीचका कोअी सम्बन्ध नहीं है। अूंचेपनका दावा करनेवाला ब्राह्मण नीचे जाता है और नीच बनता है। अपनेको नीच माननेवाले और नीचे रहनेवालेको दुनिया अूंची जगह देती है। जहां मोक्ष आदर्श है, जहां अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है, जहां आत्मा आत्मामें कोअी भेद

नहीं, वहां अूंचेपन और नीचेपनकी गुंजाअिश ही कहां रहती है? अिसलिअे राष्ट्रीय छात्रालयोंके बारेमें मेरी रायसे तो अितना ही कहा जा सकता है कि वहां शौचाचारके कायदे पूरी तरह पालनेकी कोशिश होगी, यानी ब्राह्मणका सच्चा धर्म अुनका आदर्श रहेगा; आडंबरसे भरा और नामका ब्राह्मण-धर्म पालनेका आदर्श नहीं हो सकता, क्योंकि वह दोष है और अिसलिअे छोड़नेकी चीज है।

नवजीवन, ९–९–'२८

१८

नयी विधियां

देशबंधुके अवसानके सिलसिलेमें जो सभाअें वगैरा हुअी थीं, अुनमें बहुत जगह लोगोंने मामूली क्रियाओंके अलावा अपने अनुकूल कुछ नयी बातें भी की थीं। बंगालमें बहुत जगह कीर्तन हुअे थे। कहीं गरीबोंको खिलाया गया था और कहीं कहीं लोगोंने स्नान वगैरा करके धार्मिक क्रियायें की थीं। काठियावाड़में चाड़िया गांवमें वह दिन अिस तरह मनाया गया था:

१. प्रभुसे अैसी प्रार्थना की गयी कि परमात्मा स्वर्गवासीकी आत्माको शांति दे और हिन्दुस्तानको दूसरे देशबंधु मिलें।

२. कुत्तों और गायोंको लड्डू खिलाये गये।

३. अुस दिन चरस और हल नहीं जोते गये।

४. हर किसानने अगले सालके लिअे घरकी जरूरतकी अच्छी कपास जमा कर ली।

और कअी जगहों पर अुपवास किया गया और सूत काता गया था। अैसी नयी चीजें स्वागतके योग्य हैं। जो जो शुभ काम हमें सूझें और मरनेवालेको पसन्द हों, अुन्हें अैसी तिथियोंके बहाने आगे बढ़ाना मरनेवालेके प्रति हमारे प्रेमकी अच्छी निशानी है।

चरस और हल न जोतनेमें जीवदया है। चौमासेके सिवा हम लगभग लगातार बिना विचारे चरस वगैरा चलाते हैं। असलमें अैसा करनेसे लाभके बजाय हानि ही होती है। जहां हर हफ्ते आराम लेनेका और नौकरों व जानवरोंको आराम देनेका रिवाज है, वहां लोग कुछ खोते नहीं बल्कि पाते ही हैं। अिसलिअे बड़े आदमियोंकी मृत्युके मौकों पर चरस वगैरा बन्द रखकर नौकर, जानवर वगैराको आराम देना शुभ आरंभ है।

लेकिन कुत्तों और गायोंको लड्डू खिलानेमें झूठी दया है। यह माननेकी कोअी वजह नहीं कि हमें लड्डू अच्छे लगते हैं, अिसलिअे गायको या कुत्तेको भी अच्छे लगेंगे या फायदा करेंगे। जानवरोंके स्वाद बिगड़े हुअे नहीं होते। जब मनुष्योंके स्वादमें फर्क है, तो जानवरोंका तो कहना ही क्या! अंग्रेजको लड्डू दें तो वह फेंक देगा। हममें से बहुतोंको अुनकी मिठाअी पसन्द न आयेगी। मद्रासमें कोअी रोटी खिलाये तो मद्रासके लोग अुसे नहीं खा सकते। पंजाबमें चावलका भोजन बेकार जायगा। तो फिर गायको और कुत्तेको लड्डू खिलानेका क्या मतलब? लड्डू खिलाना ठीक है, अिसका यह सबूत नहीं कि गाय और कुत्ते लड्डू खा लेते हैं। दुबले ढोरोंको घास खिलाना दया है। मगर गांवोंमें तो दुबले ढोर होने ही न चाहिये।

कुत्तोंको खानेके लिअे देना दया नहीं है; अिसमें तो मुझे अज्ञान ही दिखाअी देता है। अैसा करके हम नींद बेचकर जागरण मोल लेते हैं। कुत्तोंको गलत तरीके पर ललचाकर हम अुनकी औलादको बढ़ाते हैं और फिर अुन्हें लावारिस रखकर दुर्बल बनाते हैं। कुत्ते सब पाले हुअे ही होने चाहिये। आवारा कुत्तोंकी हस्ती हमारे पापकी या अज्ञानकी निशानी है। अहमदाबाद अपने लावारिस कुत्तोंको अेक जगहसे दूसरी जगह धकेलकर दयाधर्म पालनेका दावा करता है। दयाधर्मका जरा भी विचार करनेसे मालूम पड़ेगा कि नामकी दया करनेमें दोहरी हिंसा होती है। अेक तो कुत्तोंको अपने वातावरणमें से निकालनेकी हिंसा और दूसरी अैसे कुत्तोंको पकड़कर गरीब गांवोंके पास छोड़ देनेसे गांववालोंके साथ की जानेवाली हिंसा। आवारा कुत्तोंकी तकलीफका

अिलाज समझदार आदमियोंको धार्मिक न्यायकी वृत्तिसे ढूंढ़ना चाहिये। अैसे काम तभी हो सकते हैं जब पंचलोग दयाधर्मका बारीकीसे अध्ययन करें। अैसा न करेंगे तो वह समय आ रहा है जब धर्महीन हाकिम जल्दबाजीमें कुत्तोंको मरवा देंगे। तुरन्तका अिलाज तो कुत्तोंके जाननेवाले शास्त्रीकी देखरेखमें अुनका अलग पिंजरापोल खोलना ही मालूम होता है।

मामूली बात परसे मैं गहरा चला गया हूं। लेकिन कुत्तोंको लड्डू खिलानेका प्रस्ताव पढ़कर साबरमती आश्रम पर हुअी आवारा कुत्तोंकी चढ़ाअीके अनुभव मेरी आंखोंके सामने आ खड़े हुअे; और अुस परसे जीवदयाके बारेमें कुछ विचार मैंने पंचोंकी जानकारीके लिअे पेश किये हैं।

मगर हमारे यहां तो जैसे कमजोर और आवारा जानवर हैं, वैसे ही कमजोर और आवारा अिन्सान भी हैं। अुन्हें कमजोर रखकर जिलानेमें पुण्य मानकर हम पापका ढेर लगा रहे हैं।

पिछले सप्ताहमें मैं सुरी गया था। मैं गरीबोंका दास माना जाता हूं। अिसलिअे सुरीके महाजनोंने मेरे कारण गरीबोंको खिलाया था। अुन्होंने खानेका वक्त मेरी गाड़ी पहुंचनेके समय ही रखा था। रास्तेके दोनों तरफ खाने बैठे हुअे गरीबोंकी अिस कतारके बीचसे मुझे मोटरमें बैठाकर ले जाया गया। मैं शरमाया। अविनयका डर न होता तो मैं वहीं अुतर पड़ता और भाग जाता। खानेवाले गरीबोंके बीच मोटरमें बिराजनेवाला मैं अुनका अुद्धत दास खूब रहा! अिस बारेमें मैंने अपने दिलका कुछ रोना सुरीकी सभामें भी रोया।

अैसा ही अेक दृश्य मैंने कलकत्तेमें अेक पुराने धनी कुटुम्बके यहां देखा। वहां मुझे देशबंधुके स्मारकके लिअे चंदा अिकट्ठा करने ले जाया गया था। अुस घरानेका महल 'मार्बल पैलेस' के नामसे पहचाना जाता है। वह बना भी है सिफ संगमरमरका। महल शानदार और देखने लायक है। अुस महलके आंगनमें सदा गरीबोंके लिअे सदाव्रत बंटता रहता है। वहां गरीबोंको पकाया हुआ अन्न खिलाया जाता है। दानकी यह अुदारता मुझे दिखानेके निर्दोष अिरादेसे

और मुझे आनन्द देनेके शुभ हेतुसे मालिकोंने मुझे ठीक अुन लोगोंके खानेके वक्त बुलाया था। मैंने बिना विचारे हां कह दिया। मगर वहांका दृश्य देखकर मैं सुरीसे भी ज्यादा दुखी हुआ और घबराया। खानेवालोंके बीचसे मुझे मोटरमें बैठाकर तो नहीं ले गये, मगर मेरे पीछे जहां देखा वहीं लोगोंकी भीड़ थी। यह सारी भीड़ अुन खानेवाले कंगालोंके बीच होकर निकली। बेचारे खानेवालोंसे अिन लोगोंके पैर तो छूते ही थे। घड़ीभर तो अुन बेचारोंका खाना भी बंद रहा। अुनकी आत्माने मुझे दुआ दी हो तो धन्य है अुनकी समता और अुदारताको। कहां धूलभरा आंगन और कहां बरफ जैसा अुजला और अूंचा महल! मुझे तो लगा कि कहीं यह महल अुन गरीबोंकी हंसी तो नहीं अुड़ा रहा है! और मेरे अन्तरको अैसा लगा कि अुन गरीबोंके बीचमें होकर लापरवाहीसे चलनेवाले अुनके कृपालु दाता भी अुस हंसीमें शरीक हैं!

क्या अिस तरह लोगोंको खिलानेमें पुण्य हो सकता है? शुद्धसे शुद्ध भाव होने पर भी मुझे तो अिसमें विचार और ज्ञानके अभावमें पाप ही होता दिखा। अैसे सदाव्रत देशमें जगह जगह चलते हैं। अिससे कंगाली, आलस्य, पाखंड और चोरी वगैरा बढ़ती है; क्योंकि बिना मेहनतके खानेको मिले तो मेहनत न करनेकी आदतवाले लोग आलसी बनते हैं और फिर कंगाल बनते हैं। अैसे लोग चोरी वगैरा सीखते हैं। दूसरी बुराअियां करते हैं सो अलग। अिन सदाव्रतोंका अन्त मुझे तो खराब ही दीखता है। धनवानोंको यह सोचना चाहिये कि अुनके दानके पात्र कैसे हैं। यह बात तो है ही नहीं कि हर सदाव्रतमें पुण्य है। लूले-लंगड़े या बीमारीसे दुःखी मनुष्योंके लिअे जरूर सदाव्रतकी जरूरत है। पर अुन्हें खिलानेमें भी विवेक होना चाहिये। हजारोंके देखते हुअे कमजोरोंको भी नहीं खिला सकते। अुन्हें खिलानेके लिअे अेकांत, शांत और साफ़-सुथरी जगह होनी चाहिये। सच तो यह है कि अैसोंके लिअे खास आश्रम होने चाहिये। अैसे आश्रम कहीं कहीं तो हिन्दुस्तानमें हैं। गरीबोंको खिलानेकी अिच्छा रखनेवाले दानी गृहस्थोंको चाहिये कि वे या तो अिस तरहके अच्छे आश्रमोंमें रुपया

भेजें, या जहां अैसे आश्रम न हों वहां जरूरतके मुताबिक अिस तरहके आश्रम खोलें।

कमजोर गरीबोंके लिअे कोअी न कोअी धंधा ढूंढ़ना चाहिये। लाखोंकी भलाअी हो सके, अैसा साधन सिर्फ चरखा ही है।

नवजीवन, २–८–'२५

१९

धर्मके नाम पर अधर्म

मथुरासे अेक गृहस्थ लिखते हैं:

"मथुराके पास और गोवर्धनके अतिनिकट अेक जतिपुरा ग्राममें आगामी मासमें छप्पन भोगका मेला होगा। वैष्णव संप्रदायके अन्तर्गत गुसाअीं लोगों द्वारा अिसका आयोजन किया जायगा। सुना है कि अनुमानसे २–३ लाख रुपया अिस कार्यमें व्यय होगा। गुजरातके वैष्णवोंका, जिनमें मुख्यतः बंबअीमें व्यापार करनेवाले भाटिया लोग हैं और जिनके यहां धर्मादाकी रकम जमा रहती है, वह रुपया अिस मेलेमें व्यय किया जायगा। अिस छप्पन भोगके अवसर पर १०० या अिससे अधिक ब्राह्मण श्रीमद् भागवतका अेकसाथ पारायण करेंगे। और अनेक प्रकारके भोग, व्यंजन आदि पदार्थ बनेंगे। रथयात्राका भी यही समय होगा। सहस्रोंकी संख्यामें गुजराती लोग अिस अुत्सवमें संमिलित होंगे। धर्मके लिअे अिस दिखावेको क्या आप अुपयुक्त समझते हैं?

"यह व्रजभूमि श्रीकृष्ण महाराजका क्रीड़ास्थल है। श्रीकृष्ण महाराजकी गौमें कितनी भक्ति थी यह किसीसे छिपा नहीं है। अतअेव गौकी भक्ति ही अिस समय सच्ची श्रीकृष्ण-अुपासना है। गोवंशका अिस व्रजभूमिमें आज जितना करुण दृश्य है अुसको देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

"मथुरा-वृन्दावनमें श्रावण-भाद्रपदमें अत्यधिक मेले रहते हैं। लाखों यात्री आते हैं। बाजारमें अच्छा घी-दूध देखनेमें नहीं आता। वनस्पति घी और सड़े घीका पकवान तथा मिठाअी सर्वत्र ही बिकती है। तथा विलायती खांड़ भी खूब ही लगाअी जाती है। अब तो लकड़ीका बना हुआ आटा भी काममें लाया जाने लगा है। अुक्त सामग्रीसे तीर्थस्थलमें परिपोषित ये श्रद्धालु यात्री अिस प्रकार अपनी तीर्थयात्रा सफल करनेमें अपना सौभाग्य समझते हैं, तथा अैसी भगवद्भक्तिका परिचय देते नहीं लजाते।"

यह हिन्दी समझनेमें सरल है, अिसलिअे मैंने तर्जुमा नहीं किया। अुत्तर हिन्दुस्तानके शास्त्रको जाननेवाले ब्राह्मण भी गुजरातके श्रद्धालु मगर अुलटे रास्ते चलनेवाले वैष्णवोंके बारेमें क्या खयाल करते हैं, यह अुन्हींके शब्दोंमें बतानेके खातिर मैंने अूपरका पत्र लिखनेवालेकी भाषामें ही दिया है। मिठाअियां खाने-खिलानेमें हजारों रुपया खर्च करना और अुस कामको धर्मके तौर पर जाहिर करना तो अिस जमानेकी बलिहारी ही समझना चाहिये। जहां वैष्णवधर्ममें दूसरेके दुःखको देखना मध्यबिन्दु है, वहां भावुक माने जानेवाले वैष्णवोंने अुसे भोग भोगनेका जरिया बना डाला है। जैसे अिस देशमें और जगह होता है, वैसे गोवर्धनमें भी गायकी संतानकी तबाही होती जा रही है। दूध-घीकी कमीकी जो बात अिस पत्रमें लिखी है, अुसका अनुभव सभी यात्रियोंको हुआ है। गुजरातके धनी वैष्णव अिस पत्र पर ध्यान दें, चेतें और धर्मके नाम पर होनेवाले अधर्मसे बचें।

नवजीवन, २९–८–'२८

२०

तपका अुत्सव

अेक मित्र लिखते हैं:

"भगवान अृषभदेवजीको बारह महीने तक खानेका मौका नहीं मिला था और वैशाख सुदी तीजके दिन अपने घर जाते हुअे अुनके पोतेने दादाको देखकर खुशीके मारे गन्नेका तैयार रस अुन्हें पिला दिया था। अिस कारणसे जैनोंमें बारह महीने तक अेक अेक दिनके अन्तरसे खानेका तप करते हैं, और अुपवास देरसे शुरू किये हों तो भी वैशाख सुदी तीजका अुत्सव मनाते हैं। अिस मौकेको शादीका-सा बनाकर न्योता भेजते हैं, बर्तन और शक्कर बांटते हैं, खाना खिलाते हैं, गीत गाते हैं और शादीके टीकेकी तरह टीका लगाते ह। मेरी नम्र रायमें अैसी रूढ़िका गुलाम बननेसे आत्मा अूंची अुठनेके बजाय नीचे गिरती है, और कुछ घमण्ड पैदा होता है। अिसलिअे जब मेरी स्त्रीने बरसी-तप शुरू किया, तब मित्रोंके सामने मैंने यह कह दिया कि रूढ़िको मानकर मैं कुछ नहीं करूंगा, लड़कियोंको भी नहीं बुलाअूंगा। और मेरी शक्तिके अनुसार अच्छे काममें जो कुछ लगाना होगा गांधीजीके पास भेज दूंगा। मेरी स्त्रीने यह विचार पसन्द किया, और अुसीके मुताबिक अिस पत्रके साथ २०१ रु० की हुंडी भेजी है। अिसे भील-सेवा-मण्डलमें, अछूतोंके चंदेमें, गोशालाके काममें या जहां-कहीं आपको ठीक लगे वहीं लगा दीजिये। लोकलाजके मारे मुझे भोज देना पड़ता तो अिससे कहीं ज्यादा खर्च होता।"

अितनी हिम्मत दिखाने और बुरी रूढ़िको तोड़नेके लिअे मैं अिन मित्रको बधाअी देता हूं। अिस मिसालकी नकल दूसरे जैन,

वैष्णव वगैरा करें, तो देशमें होनेवाले लोकसेवाके कामोंको मदद मिले और धर्मके नाम पर जो भोग भोगे जाते हैं वे कुछ कम हों।

हमारा मन भोगोंमें अितना ज्यादा फंसा रहता है कि हम शुद्धसे शुद्ध चीजको भी भोगका बहाना बना लेते हैं। अुपवास वगैराका आध्यात्मिक फल छोड़कर हम अुसके जरिये बड़प्पन कमानेमें लग जाते हैं और अुसे बादमें कअी तरहके मजे अुड़ानेका साधन बना देते हैं।

असलमें तो जो लोग तप वगैरा करते हैं, अुनका धर्म है कि अुसकी डोंडी न पीटें-पिटवायें और अुसके लिअे घमण्ड न करें। सगे-सम्बन्धी अैसे तपका अच्छा अुपयोग करना चाहें, तो अुसके सिल-सिलेमें छिपे तौर पर तटस्थ भावसे अुपयोगी दान करें।

अिन मित्रके पत्रमें अेक दूसरी बातका भी जिक्र है। अनाथालय, वाल-आश्रम वगैरा संस्थाअें अैसे वक्त पर मिठाअी खानेके लिअे दानकी आशा रखती हैं। यह अफसोसनाक रिवाज है। अनाथोंका आश्रम कायम करके अुन्हें सनाथ बनाना चाहिये। और अुन्हें सनाथ बनाना हो तो भीखमें मिला खाना अुन्हें कभी न खिलाना चाहिये। अनाथालय चलानेके लिअे अच्छा दान लाना अेक बात है; अुनमें रहनेवाले अनाथोंको दानी लोग अपनी मरजीका खाना खिलायें यह दूसरी बात है। अेकमें संस्थाको चलानेकी मंशा है, दूसरीमें अनाथोंका अपमान होता है। फिर, अिस तरह भोजन मंजूर करनेवाली संस्था अुसमें रहनेवालोंकी तंदुरुस्तीको जोखिममें डालती है और अुन्हें चटोरे बनाकर अुनकी जिंदगी बिगाड़ती है। अिसलिअे अगर अिस तरहकी संस्थाअें भोजनके बजाय दान ही लेनेका आग्रह रखें और दानी लोग भोजनके रूपमें दान न देनेका आग्रह रखें, तो वे प्रजाकी भलाअीके भागीदार बनेंगे।

नवजीवन, १३–५–'२८

२१

स्मशानका सुधार

भाअी छोटालाल तेजपालने हमें दो-चार पत्र लिखे हैं और अुन्होंने जो हलचल चला रखी है, अुसके बारेमें कुछ साहित्य भी भेजा है। यह सब अितना लम्बा है और आसपासकी दूसरी हकीकतोंसे अितना भरा है कि हम अुसे छाप नहीं सकते। अिसलिअे हम सिर्फ अुनका अुद्देश्य ही देनेका विचार रखते हैं, क्योंकि यह अुद्देश्य हमें अुपयोगी जान पड़ा है।

मुर्दोंका बन्दोबस्त करनेकी तकलीफ दिन-दिन बढ़ती जाती है। गरीबोंकी अड़चन ज्यादा है। कुछ लोगोंको तो मुर्दे अुठाने तककी सहूलियत नहीं मिलती। देशमें महामारी वगैराका अुपद्रव समय समय पर होता रहता है और अुस वक्त लोगोंकी हालत बड़ी दयाजनक हो जाती है। फिर जब तक मुर्दा जलता रहे तब तक बैठे रहनेमें वक्त फिजूल बर्बाद होता है। कअी बार चिता अिस तरह बनाअी जाती है कि मुर्दा पूरा ढंकता भी नहीं।

अिन कारणोंसे भाअी छोटालाल कुछ अर्सेसे मुर्दा ले जाने और जलानेकी क्रियामें सुधार करनेकी कोशिश कर रहे हैं। हमें लगता है कि यह कोशिश प्रोत्साहनके लायक है। अिनका सुझाव अैसा है कि मुर्देको सवारीमें ले जायं। स्मशान अैसे शास्त्रीय तरीकेसे तैयार किया जाय कि मुर्दा अेक भट्ठीमें डाला जाय और तेज आगसे अुसकी फौरन् राख हो जाय। अैसा करनेसे रुपया और वक्त बच जाता है और धर्मकी भावनाको जरा भी चोट नहीं पहुंचती। फिर भी फिलहाल सवारीमें मुर्दा ले जाने और शास्त्रीय ढंगसे जलानेकी बात तुरन्त लाजमी न करके लोगोंकी मरजी पर छोड़ना ज्यादा ठीक समझा जायगा। अैसे मामलेमें लोकमतको तैयार करनेकी जरूरत है। बुरे रिवाज भी धीरे धीरे दूर किये जा सकते हैं। लोग समझकर या

श्रद्धासे खुशीके साथ जो फेरबदल मंजूर करेंगे, वही सच्चा सुधार माना जायगा। अिस तरह जहां जहां कुछ हिम्मतवाले गृहस्थ हों, रुपयेका सुभीता हो और थोड़े-बहुत लोग जलानेके नये तरीकेको माननेके लिअे तैयार हों, सवारी और जलानेकी सहूलियत हो और अिन्तजाम अच्छा रखा जाय, वहां थोड़े समयमें यह जरूरी चीज लोकप्रिय हो जायगी। और महामारीके वक्त गरीब लोग तो अिसका स्वागत ही करेंगे।

नवजीवन, ५–१०–'१९

२२

महामारी और मौतगाड़ी

काठियावाड़का पिछला (अप्रैल १९२५ का) सफर पूरा करके लौटते वक्त राजकोट बीचमें पड़ता था। स्टेशन पर आये हुअे भाअियोंसे मिलने पर मालूम हुआ कि महामारीके कारण राजकोट लगभग खाली हो गया है। अभी मैं अिसका फैसला करनेमें नहीं पड़ूंगा कि अिस तरह डरके मारे अपनी जगह छोड़ देना ठीक है या सफाअीके नियम पालते हुअे और दूसरे अुचित अुपाय करते हुअे अपनी जगह पर डटे रहना ठीक है। मगर अितना तो कहा ही जा सकता है कि राजकोट जैसे शहरको महामारीसे बचाना आसान काम होना चाहिये।

जिस खबरसे मुझे बहुत दुःख हुआ, वह तो यह थी कि महामारीसे मरे हुअे लोगोंकी क्रिया करनेमें भी कुछ लोग डरते हैं, और वह क्रिया सेवा-समिति या रियासतको करनी पड़ती है। मनुष्यको मौतका कितना भी डर हो, तो भी अपनोंकी सेवा-शुश्रूषा करना अुसका फर्ज है। जो मरे अुसकी क्रिया करना अुसका धर्म है। अिस तरह अपना अपना मामूली फर्ज भी लोग पूरा न करें, तो समाजके बन्धन टूट कर समाजका नाश हो जाय।

अिस वक्त भाअी छोटालाल तेजपालकी मौतगाड़ी याद आती है। भाअी छोटालाल तो अपनी गाड़ीके पीछे पागल हो गये हैं। जैसे मुझे चरखेमें ही सब कुछ दीखता है, वैसे अुन्हें मौतगाड़ीमें सब कुछ दीखता है। पर हम अुनकी अतिशयोक्तिका या अुनके पागलपनका खयाल न करें। यही सोचें कि वे जो बात कहते हैं, अुसमें कहां तक सचाअी है। अुनकी दलील अैसी है कि मुर्दोंको कंधे पर रखकर ले जानेमें बड़ी तकलीफ होती है, अुसमें बहुत आदमी लगते हैं और बहुत गरीब आदमियोंके लिअे तो यह लगभग नामुमकिन है। अिस-लिअे वे कहते हैं कि मुर्दोंको गाड़ीमें ले जाना ही ठीक है। अुन्होंने राजकोटमें तो अेक गाड़ी भी बनाअी है और अुस गाड़ीको आम लोगोंके लिअे मुफ्त देते हैं। अभी अिस सवालको अेक तरफ रखें कि हर मौके पर मुर्देको गाड़ीमें ही ले जायं या नहीं। लेकिन जब अैसे महामारीके समय आदमियोंकी खूब तंगी होती है और अुठाने-वालोंको जोखिम भी लेनी पड़ती है, तब गाड़ीको छूटसे काममें लेना समझदारीकी बात होगी। मुर्दा कंधे पर ही ले जानेकी बात कोअी शास्त्रकी नहीं है। यह सिर्फ रिवाजकी बात है। जहां स्मशान बहुत दूर है, जहां गरमी सख्त पड़ती है और जहां अुठानेवाले थोड़े होते हैं, वहां गाड़ी मददगार होती है। भाअी छोटालालकी बनाअी हुअी गाड़ी आदमी खींच सकता है, अुसमें घोड़ा या बैल जोतनेकी जरूरत नहीं रहती। यह गाड़ी बगैर थके अेक या दो आदमी ले जा सकते हैं। मौके पर गाड़ीका अुपयोग करनेकी मैं सबको सलाह देता हूं।

नवजीवन, १९–४–'२५

पूर्ति*

आश्रममें अुपजातियां नहीं मानी जातीं। अेक-दूसरेके साथ खानेमें छुआछूत नहीं रखी जाती। अिसलिअे आश्रममें सभी अेक पंगतमें खाने बैठते हैं। अिस व्यवहारका प्रचार आश्रमके बाहर नहीं किया जाता। अछूतपन मिटानेके लिअे अिस प्रचारकी जरूरत नहीं मानी जाती। अछूतपन मिटानेका अर्थ यह है कि अछूतोंके सार्वजनिक संस्थाओंमें जाने पर जो रुकावटें लगाअी जाती हैं अुन्हें दूर किया जाय; और अुन्हें छूने पर जो छुआछूत मानी जाती है अुसे मिटाया जाय। ये पाबन्दियां कानूनसे भी हटाअी जा सकती हैं। रोटी-बेटीका व्यवहार अेक अलग सुधार है। अिसमें कानून या समाज दखल नहीं दे सकता। अिस खयालसे आश्रमवासी अपने लिअे सबके साथ खाद्य पदार्थ खानेकी स्वतंत्रता रखते हैं, मगर अैसा करनेका प्रचार नहीं करते।

आश्रमकी तरफसे अछूतोंके लिअे पाठशालाअें खोलने और कुअें खुदवानेकी कोशिश भी हो रही है। अिसमें आश्रमका खास काम रुपया जमा करना है। अछूतपनके बारेमें आश्रमकी सही प्रवृत्ति तो आश्रमवासियों द्वारा अपने आचरणको सुधारनेकी है। आश्रममें अूंच-नीचपनको कोअी स्थान नहीं है।

अितने पर भी आश्रम वर्णाश्रमको हिन्दू-धर्मका अंग मानता है। मगर वर्णाश्रमका सच्चा अर्थ मामूली अर्थसे भिन्न है। चार वर्ण और चार आश्रम सिर्फ हिन्दू-धर्मकी ही व्यवस्था हो सो बात नहीं। यह चीज मनुष्यमात्रमें है। यह सार्वजनिक नियम है। अुसका भंग करनेसे दुनियामें कअी आपत्तियां पैदा हुअी हैं। जैसे वर्ण चार हैं, वैसे ही आश्रम भी चार हैं — ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रमका अर्थ है विद्याभ्यासका काल। अिस समयमें विद्यार्थी

---

* 'सत्याग्रह आश्रमका अितिहास' में वर्णाश्रम-धर्म, वर्ण-व्यवस्था और जात-पांतके बारेमें प्रकट किये गये गांधीजीके विचार।

— स्त्री या पुरुष — ब्रह्मचर्यका पालन करे अितना ही काफी नहीं, बल्कि अिस कालमें अुस पर विद्या-संपादनके सिवा दूसरा कोअी भार न होना चाहिये। यह अवस्था कमसे कम २५ साल तककी मानी गयी है। अुसके बाद ब्रह्मचारीको गृहस्थ-जीवनमें प्रवेश करना हो तो कर सकता है। ९९.७५ फी सैकड़ा लोग तो अुसमें प्रवेश करेंगे ही। मगर यह जीवन ५० वर्षकी अुम्रमें बन्द होना ही चाहिये। अिस कालमें गृहस्थ अपनी विषय-तृप्ति करे, धन कमाये, धंधा करे, सन्तान पैदा करे। बाकीके २५ साल पति-पत्नी अलग रहकर सिर्फ भलाअीके काम करें, जनताकी सेवा करें, और परिवार से दूर रहकर सारे संसारको परिवार माननेकी कोशिश करें। आखिरी २५ बरस दोनों संन्यासमें बितायें। अिसमें खास व्यवसायके बजाय दोनों अलग अलग रहकर लोगोंमें धार्मिक जीवनका प्रचार करें, आदर्श जीवन बिताकर लोगोंको आदर्श सिखावें, और खुद सिर्फ प्रजाकी दया पर गुजर करें। यह साफ मालूम होता है कि अिस तरहसे बहुत लोग चलें, तो समाजकी जिन्दगी बहुत अूंचे दरजेकी हो जाय।

मगर अिस बारेमें अलग अलग राय हो सकती है कि आश्रमकी जो मर्यादा अूपर बताअी गयी है, वही आज भी होनी चाहिये या दूसरी। मुझे मालूम नहीं कि आश्रम-व्यवस्थाकी खोज हिन्दू-धर्मके बाहर भी हुअी है या नहीं। आज तो यह कहा जा सकता है कि हिन्दू-धर्ममें वह लगभग नष्ट हो गयी है। ब्रह्मचर्याश्रम जैसी चीज तो कोअी है ही नहीं। और ब्रह्मचर्याश्रम आश्रम-जीवनका आधार है। दूसरे आश्रमोंमें संन्यास आश्रम नामके लिअे जरूर पाया जाता है। परंतु संन्यासियोंमें बहुतसे तो सिर्फ वेशधारी रह गये हैं, बहुतसे ज्ञानहीन हैं और कुछ, जिन्होंने विद्या अच्छी प्राप्त की है, ब्रह्मज्ञानी नहीं लेकिन धर्मांध हैं। अिनमें कहीं कहीं कोअी चरित्रवान संन्यासी भी जरूर देखनेमें आते हैं। मगर संन्यासीके तेजवाले मुश्किलसे नजर आते हैं। संभव है, अैसे लोग छिपे हुअे रहते हों। मगर यह साफ है कि संन्यास-आश्रमका भी लोप हो रहा है। जिस समाजमें प्रौढ़ संन्यासी विचरते हों, अुस समाजमें धर्म और अर्थकी कंगाली

नहीं होती, वह पराधीन नहीं होता। आजका हिन्दू समाज धर्महीन, तेजहीन, अर्थहीन और पराधीन है। अिस बारेमें दूसरी राय मैंने नहीं सुनी। मैं तो यहां तक मानता हूं कि संन्यास-आश्रम अगर जिन्दा होता, तो पासवाले दूसरे धर्मों पर भी अिन संन्यासियोंका असर पड़े बिना नहीं रहता। संन्यासी हिन्दू-धर्मका ही नहीं सभी धर्मोंका है।

मगर अैसे संन्यासी ब्रह्मचर्य-आश्रमके बिना पैदा ही नहीं हो सकते। वानप्रस्थ तो नामको भी नहीं रहा। बाकी रहा गृहस्थ-आश्रम। सो गृहस्थ-जीवन आश्रमके रूपमें नहीं रहा। वह तो सिर्फ मनमानी करनेका साधन बना हुआ है। अुसमें मर्यादा नहीं रही। दूसरे आश्रमकी ढालके बिना गृहस्थ-जीवन पशु-जीवन है। अिस जीवनकी मर्यादा मनुष्य और पशुके बीचका अेक बड़ा फर्क है। वह न रहे तो यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गृहस्थ-जीवनमें पशु-जीवनके सिवा और कुछ नहीं रहेगा।

अिस आश्रम-जीवनका फिरसे अुद्धार करनेकी भारी कोशिश आश्रममें जारी है। मुझे खुद यह प्रयत्न अैसा ही हास्यजनक लगता है, जैसे चींटा गुड़से भरे घड़ेको अुठानेकी कोशिश करे। मगर कितना ही हास्यजनक लगे, तो भी यह अेक सत्यनिष्ठासे प्रेरित प्रयत्न है। और अिसीलिअे आश्रममें सभीको ब्रह्मचर्यका पालन करना पड़ता है। आश्रमवासियोंको अुसे मरते दम तक पालना है। अिस दृष्टिसे आश्रममें रहनेवाले सभीको आश्रमवासी नहीं माना जाता। जिसने अुम्रभर ब्रह्मचर्यका पालन करनेका व्रत लिया है, वही आश्रमवासी माना जाता है। अैसे थोड़े ही हैं। बाकी सब आश्रम-विद्यार्थी माने जायंगे। अगर यह प्रयत्न सफल हो, तो शायद अुसमें से आश्रम-व्यवस्था पैदा हो जाय। मेरा खयाल है कि अिस प्रयत्नकी सफलताका अन्दाज लगानेके लिअे आश्रमकी सोलह सालकी जिन्दगी काफी नहीं है। मैं नहीं जानता कि यह अन्दाज कब लगाया जा सकेगा। सिर्फ अितना ही कह सकता हूं कि सोलह वर्षकी कोशिशके बाद मुझे जरा भी निराशा नहीं है।

जहां आश्रम-व्यवस्था अिस तरह बिगड़ गयी है, वहां वर्ण-व्यवस्थाकी हालत अिससे कुछ कम खराब नहीं है। मूलमें चार वर्ण

थे। अब अनगिनत हैं अथवा अेक ही है। यदि जातियोंके बराबर वर्ण मानें तो जातियां अपार हैं। और यदि यह मानें कि जातियोंका वर्णसे कोअी सम्बन्ध ही नहीं है (मेरी रायमें यही मानना भी चाहिये), तो अेक ही वर्ण रहा है, और वह है शूद्र। यहां शूद्रका अर्थ दोषसूचक नहीं है, लेकिन वस्तुस्थितिका सूचक है। जो वर्ग नौकरी करता है, वह पराधीन है या शूद्र है। आज तो सारा हिन्दुस्तान पराधीन है, अिसलिअे वह शूद्र है। किसान अपनी जमीनका मालिक नहीं, व्यापारी अपने व्यापारका मालिक नहीं। शास्त्रोंमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंके जो गुण बतलाये गये हैं, वैसे गुणवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय भाग्यसे ही देखनेको मिलते हैं।

जब वर्ण-व्यवस्थाकी खोज हुअी थी, तब मेरे खयालमें समाजमें अूंच-नीचकी भावना नहीं थी। अिस संसारमें न कोअी अूंचा है, न नीचा। अिसलिअे जो अपनेको अूंचा मानता है, वह कभी अूंचा नहीं हो सकता। जो अपनेको नीच मानता है, वह सिर्फ अज्ञानके कारण मानता है। अुसे अुसके नीचा होनेका पाठ अुससे अूंचापन भोगनेवालोंने सिखाया है। ब्राह्मणमें ज्ञान हो तो ज्ञानहीन लोग अुसका आदर करेंगे ही। जो ब्राह्मण आदरसे अभिमानी बनेगा या अपनेको अूंचा मानेगा, वह अुसी वक्तसे ब्राह्मण नहीं रहेगा। गुणकी पूजा सदा ही होगी। मगर गुण-वान आदमीने अपनेको जहां अिस कारणसे अूंचा माना कि तुरन्त अुसके गुण निकम्मे हो जाते हैं। जिसमें कोअी गुण या शक्ति है, वह आदमी अुस गुण या शक्तिका रक्षक है और अुसे अुसका अुपयोग समाजके लिअे करना चाहिये। किसी भी व्यक्तिको अपने ही लिअे जीनेका हक नहीं है। कोअी अपनी शक्तिका अपने ही लिअे अुपयोग नहीं कर सकता। सब अपनी शक्तिका अुपयोग समाजके लिअे पूरी तरह कर सकते हैं।

अिस कल्पनासे पहले वर्ण-व्यवस्था हुअी हो या न हुअी हो, आज तो कोअी भी अपनेको अूंचा कहलाकर जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। अुसका यह दावा समाज अपनी अिच्छासे नहीं मानेगा। यह हो सकता है कि वह जबरदस्तीके सामने सिर झुका ले। दुनियामें जो जागृति हुअी है, अुसमें स्वेच्छाचार भले बहुत आ गया हो, मगर

लोकमत अूंच-नीचका भेद सहनेको आज तैयार नहीं। दिन-दिन अिस भेदका अिनकार बढ़ता जा रहा है। यह ज्ञान फैलता जाता है कि आत्माके रूपमें सभी बराबर हैं। यह भावना भी अूंच-नीचका भाव मिटाती है कि हम सब अेक ही अीश्वरके बनाये हुअे हैं। अिसका यह मतलब नहीं कि चूंकि यह भेद नहीं है या न होना चाहिये, अिसलिअे सबकी शक्ति भी आज बराबर है या होनी चाहिये। अेक दूसरेकी शक्ति अेकसी नहीं, सबकी जायदाद बराबर नहीं, सबको समान अवसर नहीं; फिर भी सब बराबर हैं। अिसीका नाम तो भ्रातृभाव है। भाअी-बहन अलग अलग प्रकृतिके, अलग अलग शक्तिवाले और अलग अलग अुम्रके होते हुअे भी सब समान हैं। यही बात जीवमात्रके बारेमें है।

अिस तरह अगर वर्ण-व्यवस्था परमार्थके लिअे हो, धार्मिक हो, तो अुसमें अूंच-नीचपनकी गुंजाअिश ही नहीं रहती।

अिस तरहके अेक-दूसरेको समान समझनेवाले चार विभाग वर्ण-व्यवस्थामें हैं, और वे जन्मसे हैं। कर्मसे वे बदल भले ही जायं, पर वर्ण-व्यवस्थाका आधार जन्म न हो, तो अैसा लगता है कि फिर अुसका कोअी अर्थ नहीं रह जाता है।

वर्ण-व्यवस्थामें धर्म और अर्थका संग्रह है। अुसमें पिछले जन्मका और मां-बापका असर मान लिया गया है। सभी अेकसी शक्ति और अेकसी रुचि लेकर पैदा नहीं होते। यह भी नहीं हो सकता कि बेशुमार बच्चोंकी शक्तिका मां-बाप या हुकूमत अन्दाज लगा सकें। लेकिन अगर यह खयाल रखकर बच्चेको अपने धंधेके लिअे तैयार किया जाय कि बच्चेमें अुसके मां-बापका, आसपासके वायुमण्डलका और पिछले संस्कारोंका असर अवश्य होगा, तो किसी किस्मकी परेशानी न हो। निरर्थक प्रयोगोंमें लगनेवाला वक्त बच जाय, नीतिनाशक होड़ न हो, समाजमें संतोष रहे और आजीविकाके लिअे कशमकश न हो।

अिस व्यवस्थाके गर्भमें ही अूंच-नीचपनका भेद अुठ जाता है। अगर मोचीसे बढ़अी बड़ा माना जाय और बढ़अीसे वकील-डॉक्टर और भी बड़े माने जायं, तो अपनी मरजीसे कोअी मोची या बढ़अी

न रहे, बल्कि सब वकील-डॉक्टर बननेकी ही कोशिश करें। अैसा करनेका अुन्हें अधिकार होना चाहिये और तारीफकी बात समझी जानी चाहिये। यानी वर्ण-व्यवस्थाको बुराअी मानकर अुसके नाशकी अिच्छा और कोशिश करनी ठीक है।

अैसा कहनेमें कि सब अपने अपने पैतृक धंधेकी शिक्षा ग्रहण करें, यह खयाल भी आ जाता है या आना चाहिये कि सब धंधोंका मूल्य गुजरके लायक ही होना चाहिये। अगर मोचीसे बढ़अीकी मजदूरी ज्यादा हो और दोनोंसे वकील-डॉक्टरकी बहुत ही अधिक हो, तो फिर सभी वकील-डॉक्टर बननेकी कोशिश करेंगे। आज अैसा होता भी है। अुससे द्वेष बढ़ा है और वकील-डॉक्टरोंकी तादाद जितनी चाहिये अुससे ज्यादा हो गयी है। जैसे बढ़अी और मोची वगैराकी जरूरत है, वैसे समाजको वकील और डॉक्टरोंकी जरूरत भी हो सकती है। यहां ये चार धंधे अुदाहरणके लिअे और अेक-दूसरेके साथ मुकाबला करनेके लिअे दिये गये हैं। यहां यह विचार नहीं करना है कि कौनसे धंधोंकी समाजको ज्यादा जरूरत है या बिलकुल जरूरत नहीं है।

लेकिन वर्ण-व्यवस्थाको माननेके साथ ही यह भी मान लेना चाहिये कि विद्वत्ता कोअी धंधा नहीं है और रुपया जमा करनेके लिअे अुसका अुपयोग नहीं होना चाहिये। अिसलिअे वकील-डॉक्टरके कामको जिस हद तक पेशा माना जाय, अुस हद तक अुससे गुजरके लायक ही लेना चाहिये। पहले अैसा ही था। देहाती वैद्य बढ़अीसे ज्यादा नहीं कमाते थे। अुन्हें भी रोजी मिलती थी। मतलब यह कि सब धंधोंकी कीमत बराबर और गुजरके लायक होनी चाहिये। वर्णकी विशेषता अुसकी संख्याका निश्चय करनेमें नहीं है; अुसकी विशेषता मनुष्यके कर्तव्यका निश्चय करनेमें है। वर्णकी संख्या भले अेक हो या अनेक, शास्त्रकारने तो चार वर्ण जरूरी मानकर बताये हैं। सबको बराबरीका दर्जा देनेके बाद अुन्हें चार मानें या अुनकी संख्या बिलकुल अुड़ा दें, अिससे बहुत फर्क नहीं पड़ता।

अिस अर्थको सामने रखकर वर्णका पुनरुद्धार करनेकी कोशिश आश्रम करता है, भले वह समुद्रकी लहरोंको रोकने जैसी हो। अुसकी

जड़में दो बातें मैंने बताअी हैं : अूंच-नीचका भाव मिटाना और सबको रोजीका अधिकार देकर सबकी रोजी अेक-सी रखना। यह मकसद पूरा करनेमें जितनी सफलता मिलेगी, अुतना ही समाजको लाभ होगा।

कोअी कहेगा कि मैं यह हानि कैसे भूल जाता हूं कि अिस व्यवस्थासे विद्या प्राप्त करनेकी अुमंग कम हो जायगी। विद्याकी अुमंग आज जिस कारणसे होती है, वह अुसे कलंकित करता है, और अुस हद तक वह कम हो जाय तो अुसमें भला ही है। विद्या मुक्तिके लिअे यानी सेवाके लिअे है। जिसमें सेवाकी लगन होगी, वह विद्या प्राप्त करनेकी कोशिश अवश्य करेगा ही। अुसकी विद्या अुसे और समाजको सुशोभित करेगी। और जब अुससे रुपया पैदा करनेका लालच दूर हो जायगा, तब विद्याभ्यासका क्रम बदल जायगा और अुसे लेने और देनेका तरीका भी बदल जायगा। आज अुसका बहुत दुरुपयोग होता है। अिस नये दृष्टिकोणका हो, आदर तो विद्याका कमसे कम दुरुपयोग हो।

होड़की गुंजाअिश फिर भी रहेगी। वह होड़ अच्छा बननेकी, सेवावृत्ति बढ़ानेकी होगी। और सबके गुजरके लायक मिलता रहेगा, तो असन्तोष और अन्धाधुन्धी मिट जायगी।

अिस विचारसरणीके अनुसार आज वर्णका जो गलत अर्थ होता है, वह नहीं होना चाहिये। छुआछूत मिटनी चाहिये और रोटी-बेटी-व्यवहारके साथ वर्णका जो निकट सम्बन्ध आज है, वह टूटना चाहिये। किसके साथ खाया जाय और कौन किसके साथ शादी करे, अिसका वर्णके साथ कोअी सम्बन्ध नहीं। मनुष्यको जहां खाना होगा, जहां अुसे पसन्द होगा, जहां अुसे प्रेमसे निमंत्रण मिलेगा, वहां वह खायेगा। स्त्री-पुरुषको जहां अपना श्रेय दिखेगा, वहीं वे शादी करेंगे। आम तौर पर विवाह अेक ही वर्णमें होना संभव है। मगर दूसरे वर्णमें हो तो पाप नहीं माना जा सकता। पापका निर्णय दूसरी ही तरह होगा। मनुष्यका बहिष्कार वर्णसे नहीं होगा, समाजसे होगा। समाजका विधान आजसे ज्यादा अच्छा होगा। अुसमें जो गन्दगी, पाखण्ड वगैरा घर कर चुके हैं, वे निकल जायेंगे।

परिशिष्ट

१

हिन्दू समाजकी प्रतिज्ञा

[पृष्ठ ५४ पर किये गये अुल्लेखको ध्यानमें रखकर पं० मालवीयजीकी अध्यक्षतामें ता० २५–९–'३२ को हुअी हिन्दू परिषद्‌का प्रस्ताव नीचे दिया जाता है। —प्रकाशक]

"यह परिषद् प्रस्ताव पास करती है कि आजसे हिन्दू समाजमें किसीको भी जन्मके कारण अछूत नहीं माना जायगा, और जिन्हें आज तक अछूत माना जाता है, अुन्हें आम कुओं, आम पाठशालाओं, आम रास्तों और दूसरी सभी सार्वजनिक संस्थाओंका अिस्तेमाल करनेका दूसरे हिन्दुओंके बराबर ही हक होगा। अिस हकके लिअे मौका मिलते ही कानूनकी मंजूरी ली जायगी। अगर स्वराज्य मिलने तक वह मंजूरी न मिली होगी, तो स्वराज्यकी पार्लियामेण्टके सबसे पहले कानूनोंमें यह अेक होगा।

"साथ ही यह भी निश्चय किया जाता है कि आजकल अछूत माने जानेवाले वर्गों पर जो सामाजिक पाबंदियां रूढ़िके कारण लगी हुअी हैं, अुन सबको और मंदिरोंमें जानेकी मनाहीको भी सारे अुचित और शांतिमय अुपायोंसे दूर कराना तमाम हिन्दू नेताओंका धर्म होगा।"

२

आश्रमका रहन-सहन

[पृष्ठ ६५ पर गांधीजीने सत्याग्रह आश्रमके रहन-सहनका जिक्र किया है। अुस रहन-सहनकी जड़में कौनसा सिद्धान्त है, यह आश्रमकी नियमावलीमें से लिये हुअे नीचे लिखे व्रतसे समझमें आ जायगा।

— प्रकाशक]

अछूतपन मिटाना

"हिन्दू-धर्ममें अछूतपनकी रूढ़िने जड़ पकड़ ली है। अुसमें धर्म नहीं बल्कि अधर्म है, अैसा विश्वास होनेके कारण अछूतपन मिटानेको आश्रमके नियमोंमें जगह दी गअी है। अछूत माने जानेवालोंके लिअे दूसरी जातियोंके बराबर ही आश्रममें स्थान है।

"आश्रम जात-पांतका फर्क नहीं मानता। हमारा यह विश्वास है कि जात-पांतसे हिन्दू-धर्मको नुकसान हुआ है। अुसमें जो अूंच-नीच और छुआछूतकी भावना है, वह अहिंसा धर्मके लिअे जहर है। आश्रम वर्णाश्रम धर्मको मानता है। अैसा मालूम होता है कि वर्ण-व्यवस्थाका सिर्फ धंधे पर दारमदार है। अिसलिअे वर्णकी नीति पर चलनेवाला आदमी मां-बापके धंधेसे रोजी कमा कर बाकीका वक्त शुद्ध ज्ञान पानेमें और बढ़ानेमें लगाये। स्मृतियोंमें बताअी गअी आश्रम-व्यवस्था दुनियाका कल्याण करनेवाली है। मगर वर्ण और आश्रमके धर्मको मानते हुअे भी आश्रमका जीवन गीताके माने हुअे व्यापक और भावनाप्रधान संन्यासका आदर्श सामने रखकर बनाया हुआ है, और अिसलिअे अुसमें वर्णके भेदकी गुंजाअिश नहीं है।"

सूची

Gurukula
Library

मंगल-प्रभात

सन् १९३० में गांधीजी यरवडा जेलमें थे। वहांसे वे प्रत्येक मंगलवारको आश्रमके व्रतों पर विवेचन लिखकर साबरमती आश्रमके सदस्योंको भेजा करते थे। अिसमें सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह आदि आश्रम-व्रतोंका गांधीजी द्वारा किया हुआ सरल और सुबोध विवेचन पाठकोंको मिलेगा। अिस हिन्दी अनुवादमें सिर्फ अुर्दू जाननेवालोंकी सुविधाके लिअे आसान अुर्दू शब्द भी दिये गये हैं।

कीमत ०.३७ डाकखर्च ०.१३

सर्वोदय

गांधीजीके मतानुसार सर्वोदयका अर्थ आदर्श समाज-व्यवस्था है। अिस पुस्तकमें सर्वोदयकी विस्तृत चर्चा की गअी है और बताया गया है कि वह कैसे सिद्ध किया जा सकता है। अिस संग्रहका अुद्देश्य संसारके सामने गांधीजीका शांति और स्वतंत्रताका अुदात्त संदेश पेश करना है।

कीमत २.०० डाकखर्च ०.८७

हरिजनसेवकोंके लिअे

यह संग्रह अेक अैसी पुस्तिकाकी आवश्यक मांगके अुत्तरमें तैयार किया गया है, जो अस्पृश्यता-निवारणके कार्यमें लगे हुअे सेवकोंके हाथमें रखी जा सके और जिसमें अिस विषय पर गांधीजीके विचार अत्यंत संक्षेपमें मिल सकें कि यह कार्य किस ढंगसे किया जाय। आशा है यह संग्रह अिस अुदात्त ध्येयकी सिद्धिमें लगे हुअे सेवकोंके लिअे बहुत अुपयोगी सिद्ध होगा।

कीमत ०.३७ डाकखर्च ०.१९

यरवडाके अनुभव

लेखक : **गांधीजी;** अनु० **रामनारायण चौधरी**

अिस छोटीसी पुस्तिकामें गांधीजीने भारतकी अपनी प्रथम जेल-यात्रा (१९२२) के अनुभवोंका वर्णन किया है। यहां हम अेक आदर्श सत्याग्रही कैदीके रूपमें गांधीजीका दर्शन करते हैं। अिसमें अुन्होंने जेल-अधिकारियों, कैदी-वार्डरों, सत्याग्रही कैदियों तथा अपने अध्ययनके बारेमें दिलचस्प बातें बतायी हैं। पुस्तकके प्रास्ताविक विभागमें गांधीजी पर चलाये गये मुकदमेकी पूरी कार्रवाअी और अन्तमें अधिकारियोंके साथ हुआ अुनका पत्रव्यवहार भी दिया गया है।

कीमत १.०० डाकखर्च ०.२५

सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा

लेखक : **गांधीजी;** अनु० **काशिनाथ त्रिवेदी**

अिस पुस्तककी प्रस्तावनामें गांधीजीने लिखा है : "मेरी बिनती है कि कोअी मेरे लेखोंको प्रमाणभूत न समझें। मैं सिर्फ अितना ही कहना चाहता हूं कि अिनमें बताये गये प्रयोगोंको दृष्टांतरूप मानकर सब अपने-अपने प्रयोग यथाशक्ति और यथामति करें। मेरा विश्वास है कि अिस संकुचित क्षेत्रमें आत्मकथाके मेरे लेखोंसे पाठकोंको बहुत कुछ मिल सकता है।" राष्ट्रपिता महात्मा गांधीके जीवन और कार्य-पद्धतिको समझनेकी अभिलाषा रखनेवाले प्रत्येक भारतीयको यह अमूल्य ग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिये।

कीमत १.५० डाकखर्च ०.५०

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद – १४